फ्रांड्स राराउ कं०

गोरखपुर

व्यवहारिक मनोविज्ञान

लेखक

हरिश्चन्द्र M.A., D.Phil.,

गोरख प्रसाद M.A. (Double), B.Ed.,

प्रकाशक

फ्रेण्डस एण्ड कम्पनी

बखशीपुर, गोरखपुर

मूल्य

८.५०

मुद्रक
शतदल प्रेस
अलीनगर, गोरखपुर

★

प्रथम संस्करण सन् १९६३
मूल्य—आठ रुपया पचास नया पैसा

★

प्रकाशक
फ्रेण्डस एण्ड कम्पनी
बख्शीपुर, गोरखपुर

प्रस्तावना

दिन-प्रतिदिन मानव विभिन्न विषयों (Different disciplines) द्वारा वैज्ञानिक अध्ययन का 'विषय' बनता जा रहा है। व्यावहारिक-मनोविज्ञान भी उनमें से एक है। कोई एक विषय मानव के बारे में सार्वभौमिक ज्ञान नहीं प्रदान कर सकता। अतः सत्य की खोज में विभिन्न विषयों का अन्तर-सम्बन्ध आवश्यक है। हमने, इस पुस्तक की सामग्री सजाने में, इसी सम्बन्ध को अपनाया है। हमारा विश्वास है कि व्यावहारिक मनोविज्ञान का उद्देश्य, विषयों के अन्तर-सम्बन्धीय प्रयत्न से और भी स्पष्ट हो जाता है।

आवश्यकतानुसार पारिभाषिक शब्दों को मनोविज्ञान की प्रचलित पारिभाषिक शब्दावली से चुना गया है। साथ ही साथ व्यावहारिक मनोविज्ञान सम्बन्धी आधुनिकतम उपलब्धियों का भी उपयोग किया गया है। विशेष बल इस बात पर दिया गया है कि व्यावहारिक मनोविज्ञान के जो वैज्ञानिक तथ्य हैं, वे सरलता से विद्यार्थियों की समझ में आ जायें। पुस्तक की सामग्री को इस तरह सजाया गया है कि विद्यार्थियों को परीक्षा की तैयारी करने में सहायता मिल सके। और साधारण पाठक भी लाभान्वित हो सकें। माध्यमिक शिक्षा परिषद द्वारा इन्टरमीडिएट परीक्षा में जो प्रयोग रक्खे हैं, विद्यार्थियों की सुविधा के लिए, उनका समावेश पुस्तक के दसवें अध्याय में कर दिया गया है।

समय-समय पर हम अपने पूज्य गुरु प्रो० शिवानन्द शर्मा, अध्यक्ष दर्शन विभाग, सेन्ट ऐन्ड्रयूज कालेज, गोरखपुर और मित्र श्री आद्या प्रसाद प्राध्यापक (मनोविज्ञान) डी० वी० कालेज गोरखपुर के बहुमूल्य सुझावों से लाभान्वित होते रहे हैं। लोकोक्तियों के संग्रह एवं पाण्डुलिपि के तैयार करने में कुमारी कुसुमलता, श्री प्रमोदचन्द एवं अपने विद्यार्थियों से सहायता मिली है। श्री गौरीदयाल वच्चा, स्वत्वाधिकारी फ्रेण्ड्स एण्ड कम्पनी, गोरखपुर ने इस पुस्तक के प्रकाशन का भार बड़े कठिन समय में सम्भाला है। हम अपने सभी सहयोगियों के आभारी है।

गोरखपुर
जुलाई १९६२

डा० हरिश्चन्द्र
गोरख प्रसाद

विषय-सूची

अध्याय १
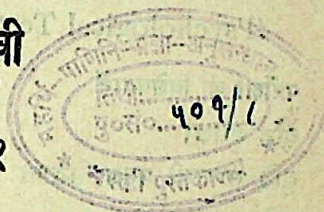
विषय प्रवेश (Introduction) १—८

अध्याय २

मनोविज्ञान परीक्षण एवं मार्गोपदेशन

(Psychological Testing and Guidance) ९—१८

अध्याय ३

वैयक्तिक, व्यावसायिक एवं शैक्षिक मार्गोपदेशन १९—३४

(Personal, Vocational and Educational Guidance)

अध्याय ४

अध्याय ५

बालक का अभियोजन

अध्याय ६

भीड़ (Crowd) ९६—१११

श्रोतृगण (Audience)

अध्याय ७

सामुदायिक जीवन (Group-life) ११२—१२८

अध्याय ८

प्रचार (Propaganda)

अध्याय ९

अध्याय १०

अध्याय

: १ :

विषय प्रवेश

लोग मनोविज्ञान का अध्ययन कई कारणों से करते हैं। सामाजिक घटनाओं के पीछे मनोवैज्ञानिक कारणों की खोज करने के लिए तो कुछ ही व्यक्ति इसका अध्ययन करना पसन्द करते हैं, परन्तु, अधिकांश व्यक्ति मनोविज्ञान का अध्ययन इसलिए करते हैं कि प्रति-दिन के जीवन में उठने वाली समस्याओं से उनका सफल अभियोजन स्थापित हो सके। मानव-कल्याण में, मनोविज्ञान एक महत्त्वपूर्ण विज्ञान है। आधुनिक वैज्ञानिक और तकनीकी उन्नति ने हमें एक ऐसे युग में पहुँचा दिया है कि हम खतरनाक हथियारों से उसी प्रकार खेलते हैं जैसे नादान बालक खिलौने से। उद्योगीकरण से ऐसे सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन हुए हैं कि जिनसे मनुष्य का अभियोजन नहीं स्तापित हो सका है। आधुनिक अविष्कारों के कारण मानव समाज के विचारों पर भी नियत्रंण रखना सरल हो गया है। यदि इन साधनों के प्रयोग का अधिकार मनोवैज्ञानिक रूप से प्रौढ़ व्यक्तियों के हाथ में रहा तो क्षणिक संवेगीय उत्तेजना, व्यक्तिगत रुचि, मानसिक ग्रंथियाँ और अन्य असन्तुलित व्यवहार किसी समय विनाश का कारण हो सकते हैं। इतिहास साक्षी है कि तानाशाहों ने अपने अहंकार को सन्तुष्ट करने के लिए खून की नदियाँ बहा दी हैं। यदि आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का संचालन स्वस्थ एवं सन्तुलित मस्तिष्क करने लगें तो उसमें भी बहुत कुछ सुधार हो जाए।

जीवन की उलझनों में फँसे हुए व्यक्तियों को मनोविज्ञान का सहारा लेना चाहिए। परिवार समाज की सबसे महत्त्वपूर्ण इकाई है। यदि माता-पिता मनोवैज्ञानिक रूप से प्रौढ़ न हों और वे मनोनिज्ञान की बारीकियों से परिचित न हों तो बालक के सबसे बड़े शत्रु साबित ह सकते हैं। जब बालक अपने घर की चाहारदीवारी से बाहर निकलकर समुदाय में आता है तो नए मनोवैज्ञानिक अनुभव प्राप्त करता है। परिवार समुदाय और स्कूल यही तीनों संस्थायें बालक के चरित्र को रूप प्रदान करती हैं। ये चरित्र-निर्माण शालायें हैं, जिनमें मानव-जाति के भावी कर्णधारों का चरित्र बनता है।

मनोविज्ञान क्या है ?

मनोविज्ञान (Psychology) ग्रीक भाषा के Psyche (आत्मा) शब्द से निकला है। पहले मनोविज्ञान को दर्शन शास्त्र की एक शाखा माना जाता था, परन्तु शीघ्र ही यह एक प्राकृतिक विज्ञान के स्तर पर आ गया। मनोविज्ञान वैज्ञानिक विधियों पर आधारित एक विधायक-विज्ञान है, जो निम्न सोपानों के द्वारा प्राणियों के व्यवहार और अनुभूति का अध्ययन करता है—(अ) निर्धारित घटना का निरीक्षण (ब) तथ्य-संचय (स) तथ्यों में समान गुणों का निरीक्षण (द) प्राक्कल्पना (Hypothesis) का निर्माण (य) तथ्यों की व्याख्या (र) व्याख्या का समर्थन। इन सोपानों द्वारा मनोविज्ञान मानवीय व्यवहारों का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करने वाला विज्ञान है।

मनोविज्ञान में हम व्यहावर को केवल साधारण व्यवहार नहीं समझते बल्कि मनोदैहिक संगठन के समस्त सन्तुलित और असन्तुलित व्यवहारों को इसमें सम्मिलित करते हैं। मनोविज्ञान का क्षेत्र संक्षेप में इस प्रकार है :—

(अ) मनुष्य एक मनोदैहिक संगठन (Psycho Physical organism) है। इस लिए हम केन्द्रीय नाड़ी मण्डल, ग्रंथियाँ; सहज क्रियायें और अन्य मनोदैहिक व्यवहारों का अध्ययन करते हैं।

(ब) हम मनोविज्ञान के अन्तर्गत उस वातावरण का भी अध्ययन करते हैं जो मनुष्य को प्रभावित करता है और स्वयं भी मनुष्य द्वारा परिवर्तित होता है।

वातावरण ——> प्राणी ——> वातावरण

(स) मनोविज्ञान केवल मानव का ही नहीं बल्कि पशुओं और कीड़े मकोड़ों का भी अध्ययन करता है।

(द) मनोविज्ञान प्राणी के व्यवहारों को विशिष्ट शाखाओं में बाँट कर अध्ययन करता है। कुछ मुख्य शाखायें इस प्रकार हैं—समाज-मनोविज्ञान, शिक्षा-मनोविज्ञान, चिकित्सा-मनोविज्ञान, औद्योगिक-मनोविज्ञन- मलोविश्लेषण आदि।

मनोविज्ञान के मूल तत्व :— मनोविज्ञान के मूलतत्व निम्नलिखित हैं:

(१) केन्द्रीय नाड़ी-मण्डल।

(२) बाहरी जगत से सम्पर्क–संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, ध्यान।

(३) बाहरी जगत से उत्तेजित होकर क्रिया करना। सहज-क्रिया मूलप्रवृत्तियाँ।

(४) अभियोजन और सीखना—भूल और प्रयत्न सिद्धान्त, नियन्त्रित क्रिया, सूझ द्वारा सीखना।

(५) विचारों में सुधार (Modification) स्मृति, प्रेरणा और प्रणोदन भाव, और संवेग (Aptitude) तथा वैयक्तिक भिन्नता एवं व्यक्तित्व।

व्यावहारिक मनोविज्ञान

Applied psychology

विज्ञान की उत्पत्ति सामाजिक आवश्यकता से सम्भव हुई है। अतः इसका प्रयोग, मानवीय जीवन को समृद्धशाली बनाने में करना

चाहिए। आधुनिक विज्ञान ने मनुष्य को जो सुख और सुरक्षा प्रदान की है उसका उल्लेख करना, यहाँ आवश्यक नहीं है। विज्ञान को व्यावहारिक रूप में प्रयोग करके तीव्र आवागमन के साधन, रोगों पर विजय, दैनिक जीवन में सुख देने वाली वस्तुओं का होना आदि सम्भव हुआ है। इसी प्रकार व्यारहारिक मनोविज्ञान का उद्देश्य मानव जीवन को सुखी बनाना है।

हम व्यावहारिक मनोविज्ञान की परिभाषा इस प्रकार करते हैं :— "व्यावहारिक मनोविज्ञान वह उपयोगी विज्ञान है जो अभियोजन प्रक्रिया में, मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों और नियमों का प्रयोग करते हुए जीवन के विभिन्न व्यावहारिक क्षेत्रों में उपस्थित होने वाली समस्याओं से व्यक्ति का अभियोजन स्थापित करने में सहायक होता है।" व्यावहारिक मनोविज्ञान मानवीय क्रियाओं को समझकर इस प्रकार नियंत्रित करने का विज्ञान है कि वे क्रियाएँ स्वयं उस व्यक्ति और दूसरों के जीवन में शान्ति, सन्तोष और सुख ला सकें। यह उद्देश्य अभियोजन की प्रक्रिया द्वारा प्राप्त हो सकता है।

व्यावहारिक मनोविज्ञान का क्षेत्र

(१) व्यक्तिगत समस्याओं का सुलझना—प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्यायें भिन्न होती हैं, परन्तु मानसिक समस्याओं को तीव्र करना, उचित व्यवसाय प्राप्त करना, प्रेम-विवाह और व्यवहार को सफल बनाना इत्यादि सामान्य समस्यायें हैं, जिन्हें व्यक्ति अधिकाधिक लाभप्रद बनाना चाहता है। व्यावहारिक मनोविज्ञान बुद्धि परीक्षा के द्वारा व्यक्ति अन्तर-दृष्टि जागृत कर सकता है तथा उसे सीखने के लिए सर्वोत्तम विधियाँ बता सकता है। उसकी रुचि और योग्यता का परीक्षण करके उसे उचित व्यवसाय ग्रहण करने का सुझाव दे सकता है। प्रायः बहुत से प्रेम और और विवाह साधारण मनोवैज्ञानिक त्रुटियों के कारण असफल हो

जाते हैं। व्यावहारिक मनोविज्ञान हमें वैवाहिक जीवन की समस्याओं को समझने और उन्हें सुलझाने में सहायक होता है।

परिवार को नागरिकता की प्रारम्भिक पाठशाला माना गया है। वह राष्ट्रीय जीवन की प्रथम इकाई भी है। किसी समाज की स्थिति का पता उसके परिवारों की दशा को देखकर लगाया जा सकता है। ध्यान देने पर पता चलता है कि परिवार में बालकों के साथ अमनोवैज्ञानिक व्यवहार करने से वे सदा के लिए दु:खी हो जाते हैं। उनमें ऐसी त्रुटियाँ आ जाती हैं कि वे जीवन पर्यन्त उनके प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाते। अत: व्यवहारिक मनोविज्ञान बाल-निर्देशन (Child guidance) की समस्याओं को सुलझाता है।

कर्मचारियों से व्यवहार

उद्योग की सफलता बहुत कुछ मालिक और कर्मचारियों के अच्छे सम्बन्धों पर निर्भर है। नौकरी के लिए उचित आदमी का चुनाव करना, उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण देना तथा समय-समय पर उनकी जाँच करते रहने की विधियों पर व्यावहारिक मनोविज्ञान प्रकाश डालता है। कर्मचारियों की पदोन्नति तथा उनको प्रोत्साहित करने के लिए पुरस्कार देने में मनोवैज्ञानिक विधियों को अपनाना चाहिए। व्यावहारिक मनोविज्ञान यह भी बतलाता है कि उत्पादन में कौन सी अवस्थायें बाधक और कौन सी सहायक होती हैं। अत: बाधक अवस्थाओं को दूर करके प्रकाश, वातायन, तापक्रम तथा ध्वनि इत्यादि की सुव्यवस्था करना बताता है। इसके अतिरिक्त व्यावहारिक मनोविज्ञान कारखानों में तालाबन्दी और हड़ताल आदि के मनोवैज्ञानिक कारणों पर भी प्रकाश डालता है तथा उन्हें दूर करने के उपाय भी प्रस्तुत करता है।

उपभोक्ता

आधुनिक व्यवहार उपभोक्ता की मनोदशा को जानकर अपने उत्पादन को नियंत्रित करता है। प्रचार और विज्ञापन के द्वारा बाजार का

निर्माण करना तथा उसे नियंत्रित करने का ढंग व्यावहारिक मनोविज्ञान बतलाता है। व्यावहारिक मनोविज्ञान उन सभी मनोवैज्ञानिक बारीकियों को बतलाता है, जिनके द्वारा उपभोक्ता के मन में उत्पादित वस्तुओं के प्रति आकर्षण उत्पन्न किया जाता है।

सामूहिक व्यवहार

व्यावहारिक मनोविज्ञान हमें यह बतलाता है कि समूह में व्यक्ति की मनोदशा भिन्न हो जाती है। भीड़ में वह केवल उत्तेजक प्रवृत्तियों द्वारा प्रभावित होकर व्यवहार करता है। उसका बौद्धिक स्तर नीचा हो जाता है। विवेकशीलता और उत्तरदायित्व की भावना कम हो जाती है। समुदायिक तनाव, सामाजिक उथल पुथल का, कारण बन जाता है। व्यावहारिक मनोविज्ञान तनाव के कारण को समझ कर उसे कम करने के उपाय बतलाता है। दबी हुई आक्रामक तथा असुरक्षा की भावनायें, सामुदायिक दंगों और अन्य हिंसात्मक व्यवहारों का, कारण बनती हैं। भारतीय राष्ट्रिय-जीवन में राष्ट्रिय एकता स्थापित करने के लिए व्यावहारिक मनोविज्ञान बहुत सहायक सिद्ध होगा।

मानसिक स्वास्थ्य

मानसिक रोगी अपना ही जीवन नहीं बल्कि दूसरों का जीवन भी दुःखमय कर देता है। हम अपने दैनिक जीवन में नित्य ऐसे मित्र, अधिकारी तथा परिवारिक सदस्यों के सम्पर्क में आते हैं, जो किसी न किसी मानसिक विकार से पीड़ित रहते हैं। मानसिक विकार के अनेक कारणों पर व्यावहारिक मनोविज्ञान प्रकाश डालता है। यदि वे कारण शारीरिक हैं तो उनका उचित इलाज करना चाहिए। यदि वे रोग या वातावरण से उचित अभियोजन स्थापित न होने के कारण उत्पन्न हुए हों, तो भी व्यावहारिक मनोविज्ञान उचित मार्ग-निर्देशन प्रस्तुत करता है। परन्तु मनोविज्ञान छूमन्तर नहीं है। इसका सदुपयोग, बहुत कुछ व्यक्ति के स्वभाव और संकल्प पर निर्भर होता है।

शिक्षा में व्यावहारिक मनोविज्ञान

बालक कोरी पटिया के समान होता है। उसको उचित मार्ग पर चलाना और उसकी शक्तियों का उचित विकास कराना, शिक्षक की प्रथम समस्या है। बुद्धि की भिन्नता से बालकों की रुचि क्षमता और कार्य-कुशलता की भिन्नता का पता चलता है। बुद्धि को परीक्षा द्वारा मापा जाता है। बुद्धि मापने की विधि मनोविज्ञान बतलाता है। शिक्षा में सीखने के मौलिक सिद्धान्तों का विशेष महत्व है। सीखने की प्रक्रिया को कैसे नियंत्रित किया जाय यह मनोविज्ञान का विषय है। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत क्षमता मैं वृद्धि, आदतों का ग्रहण और परित्याग, संवेगों पर नियंत्रण तथा ध्यान, स्मृति और व्यक्तित्व की उन्नति की विधियाँ आदि व्यावहारिक मनोविज्ञान द्वारा ज्ञात होती हैं। आधुनिक शिक्षा और व्यावसायिक निर्देशन मनोविज्ञान की व्यावहारिकता के उज्ज्वल प्रमाण हैं।

अन्य क्षेत्र

पूर्वोक्त क्षेत्रों के अतिरिक्त व्यावहारिक मनोविज्ञान कुछ अन्य क्षेत्रों में भी लाभदायक सिद्ध हो सकता है। जैसे जीवन का कला और मनोरंजन में रुचि लेकर भरपूर उपयोग करना, दूसरे व्यक्तियों को अपने व्यवहार से प्रभावित करना तथा भाषण, कहानी, नाटक, उपन्यास और लेख आदि लिखना। व्यावहारिक मनोविज्ञान जनमत, राजनीति, धर्म, युद्ध और शान्ति आदि क्षेत्रों में भी उपयोगी सिद्ध होता है।

मनोविज्ञान के पूर्वोक्त तथ्यों का सविस्तार वर्णन करना इस पुस्तक के क्षेत्र में नहीं है। संक्षेप में यह समझ लेना पर्याप्त होगा कि मनोविज्ञान, प्राणी के मनोदैहिक संगठन, केन्द्रीय नाड़ी-तंत्र, सुष्म्ना एवं मास्तिष्क की रचना एवं कार्यो का, अध्ययन करता है। वाह्य जगत में प्राप्त उत्तेजना का प्रभाव ज्ञानेन्द्रियों पर किस तरह होता है और इसका प्रत्यक्षीकरण

किस प्रकार सम्भव होता है, इसका अध्ययन भी मनोविज्ञान करता है। उत्तेजना से प्रभावित होकर प्राणी मनोदैहिक क्रिया करता है। क्रियायें कई प्रकार की होती हैं। जो क्रियायें सरल होती हैं, उन्हें सहज क्रिया या अनैच्छिक क्रिया कहते हैं। जो क्रियायें सोच समझ कर की जाती हैं, उन्हें ऐच्छिक क्रिया कहते हैं। बार-बार उत्तेजना और प्रतिक्रिया के दुहराने से उत्पन्न होने वाली क्रिया नियंत्रित सहज क्रिया कहलाती हैं। प्राणी में मूल प्रवृत्तियाँ, प्रणोदन और अनुप्रेरणायें होती हैं। इन सब सामूहिक प्रभाव उसके व्यवहारों को निर्धारित करता है।

सीखना और स्मृति-शक्ति का अध्ययन मनोविज्ञान का विशेष अंग है। ध्यान, स्मृति और सीखने के नियमों का उल्लेख भी मनोविज्ञान करता है। प्राणी के अनुभव सुखद और दुःखद भावों से भी ओत प्रोत होते हैं। अतः उसकी संवेगीय स्थिति के अध्यन के बिना व्यवहारों की व्याख्या नहीं की जा सकती।

व्यावहारिक मनोविज्ञान व्यक्ति की प्राकृतिक एवं अर्जित क्षमता पर विशेष ध्यान देता है। वह व्यक्ति की क्षमता को माप कर मार्गोपदेशन करना चाहता है। अतः व्यक्तित्व के विकास और विशेषताओं का अध्ययन मनोविज्ञान के लिए अत्यावश्यक है। इसी के द्वारा व्यक्तिगत भिन्नता का पता चलता है तथा व्यक्तिगत भिन्नता को ही दृष्टि में रखकर व्यावहारिक मनोविज्ञान से लाभ उठाया जा सकता है।

अध्याय
: २ :
मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मर्गोपदेशन
Psychological Testing and Guidance

प्रत्येक स्तर और परिस्थिति में जीवन एक कला है। परिस्थितियों से कुशल अभियोजन स्थापित करना ही इस कला का उद्देश्य है। इस प्रयोग कीं पूर्ति में मनोवैज्ञानिक परिक्षण सहायक हो सकते हैं। आज के युग में मार्गोपदेशन, जन्मकुण्डली, नक्षत्र या इष्ट पूजन आदि से नहीं संचालित होता, बल्कि वैज्ञानिक रीति से व्यक्ति की कार्य-क्षमता और रुचि का मूल्याकंन करके सुझाव प्रस्तुत किये जाते हैं। जीवन के सम्बन्ध में 'मन की खीर' खाने का युग नहीं रहा। अब तो कार्यक्षमता, अभिरुचि, शिक्षण, प्रशिक्षण और वैयक्तिक भिन्नता पर बल दिया जाता है। आज की शिक्षा प्रणाली और प्रत्येक क्षेत्र में मार्गोपदेशन, वैयक्तिक भिन्नता को आधार मानकर अपना कार्य करता है। अतः व्यक्ति की बुद्धि, रुचि और अन्य वैयक्तिक गुणों को नापने के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Psychological Testing) की विधियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं। हम अपने पाठको को यह भी बता देना चाहते हैं कि आधुनिक वैज्ञानिक क्षेत्रों में प्रत्येक तथ्य को आँकड़े, वक्र रेख, तालिका, सूत्र आदि में रखने की सनक (Craze) है। गणित, भौतिक, रसायन ऐसे शास्त्रों के

तथ्य तो सरलता से संख्यात्मक रूप में रखे जा सकते हैं। पर, बहुत से वैयक्तिक और सामाजिक तथ्यों का संख्यात्मक प्रदर्शन अभी सम्भव नहीं हो पाता है। साधारणतः ऐसे तथ्यों की विधियाँ उपयोगी लक्षण प्रस्तुत करती हैं। आशा की जाती है कि भविष्य में, वैयक्तिक एवं सामाजिक तथ्यों को नापने की ऐसी कुशल विधियाँ निकल आयेंगी, जिन से इन तथ्यों को भी विश्वसनीयता (Reliability) और विधेयात्मकता (Objectivity) के आधार पर संख्यावद्ध किया जा सकेगा। ये विधियाँ अभी अधकचरी हैं, इनके उज्वल भविष्य पर विश्वास करना ही होगा। किसी भी परीक्षण की अनिवार्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं :—

(१) विश्वसनीयता (Reliability) जब किसी परीक्षण के परिणाम या प्राप्तांक (Scores) बार बार, कइ परीक्षकों द्वारा भी समान आते हैं तो परिणाम प्रतिपन्न (Accurate) और एक रस होते हैं। वहाँ परीक्षण को विश्वसनीयता है।

(२) प्रमाणिकता (Validity) जिस तथ्य की जानकारी के लिए हम परीक्षण-परिणाम भी वही निकले तो परीक्षण प्रमाणिक समझा जाता है।

(३) विधेयात्मकता (Objectivity) किसी भी परीक्षण विधि की सफलता या असफलता इस बात पर है कि उसका उपयोग किन हाथों के द्वारा हो रहा है। यदि परीक्षक अपनी पूर्व धारणा इच्छा, पसन्द, नापसन्द का समावेश परीक्षण में करता है तो परिणाम में विधेयात्मकता नहीं रहेगी। जो तथ्य जैसा है उसे उसी रूप और उन्हीं गुणों के साथ देखना ही विधेयात्मकता है। यह विशेषता सरलता से नहीं बल्कि निरन्तर बौद्धिक अनुशासन एवं साधना से प्राप्त होती है।

(४) प्रमाण और प्रतिमान शीलता (Standard and Norms)

परीक्षण के परिणाम को समझने के लिए प्रमाणिकता और प्रतिमान-शीलता का होना आवश्यक है।

(५) व्यावहारिकता (Practicability) परीक्षण ऐसा होना चाहिए जिसे सरलता से व्यवहार में लाया जा सके। जिस परीक्षण के लिए सरलता से साधन नहीं जुटाये जा सकते, वह अच्छा परीक्षण नहीं समझा जाता।

व्यक्ति की विभिन्न विशेषताओं को जानने के लिए विशेष मनोवैज्ञानिक परीक्षण करना उचित होता है। हम यहाँ कुछ परीक्षणों का उल्लेख करते हैं :—

बुद्धि परीक्षा (INTELLIGENCE TEST)

हम, लोगों को, उनकी क्रियाओं के आधार पर, तीव्र या मन्द बुद्धि की श्रेणी में रखते हैं। अतः कार्य करने के ढंग को बुद्धि कहते हैं (Intelligence is a way of acting) विश्व के मनोवैज्ञानिक बुद्धि की कोई सन्तोषजनक परिभाषा नहीं दे पाये हैं। थार्नडाइक ने बुद्धि को अच्छी प्रतिक्रिया बतलाया है। बकिंघम (Buckinghem) ने बुद्धि को परिस्थिति के अनुसार कार्य करने की योग्यता कहा है। ईस्टर्न के अनुसार, बुद्धि वह शक्ति है, जो परिस्थितियों से अभियोजन स्थापित करने में सहायक होती है। वुडवर्थ ने बुद्धि का अर्थ बौद्धिक क्षमता का प्रयोग बतलाया है। इन मतों के अनुसार बुद्धि किसी वास्तविक वस्तु का नाम नहीं है वरन कुछ क्षमताओं एवं विशेषताओं का नाम है। वेसलर (Werchslter) ने बुद्धि की परिभाषा इस प्रकार दी है—"अभिप्राय युक्त कार्य करने, तर्कयुत चिन्तन करने तथा अपने वातावरण के साथ प्रभावपूर्ण व्यवहार करने की व्यक्ति की सम्पूर्ण अथवा सार्वभौम क्षमता ही बुद्धि है।" बुद्धि की परिभाषाओं में एक समानता पाई जाती है कि बुद्धि एक प्रकार की सामान्य विशेषता है।

बुद्धि सम्बन्धी प्रमुख सिद्धान्त

वायनेट का सिद्धान्त—वायनेट के अनुसार बुद्धि एक जटिल मानसिक योग्यताओं का नाम हैं, जिसकी मुख्य योग्यताएँ निम्न-लिखित हैं :—

(१) किसी समस्या को समझना और उसकी ओर मानसिक आदेशानुसार बढ़ना।

(२) परिस्थिति की आवश्यकतानुसार अभियोजन स्थापित करना।

(३) आत्मबोधन करना।

वायनेट ने मस्तिष्क को 'विभिन्न योग्यताओं में विभक्त समझा है। वास्तव में मस्तिष्क इस प्रकार एक खण्डित इकाई नहीं है।

स्पीयर मैन का द्वितत्व सिद्धान्त (Spearman's two fctors Theory) सन् १९०४ में स्पीयर मैन ने बुद्धि का अपना सिन्द्धान्त रक्खा। बुद्धि में वे दो तत्व मानते हैं। एक को उन्होने सामान्य तत्व (General factor) और दूसरे को विशिष्ट तत्व (Specific factor) सामान्य तत्व सभी प्रकार की मानसिक क्रियाओं में निहित समझा जाता कहा है।है। किन्तु विशिष्ट तत्व विशेष प्रकार की क्रियाओं में पाया जाता है। विभिन्न क्रियाओं के लिए विभिन्न प्रकार के विशिष्ट तत्व होते हैं। सामान्य तत्व सभी प्रकार की मानसिक क्रियाओं को प्रभावित करता है, किन्तु विशिष्ट तत्व विशेष प्रकार की मानसिक क्रियाओं को ही प्रभावित करता है।

थार्नडाइक का संश्लेषणात्मक सिद्धान्त (Thorndike's synthetic Theory)—थार्नडाइक ने बताया कि विशिष्ट क्रियाओं में कुछ सामान्य बातें भी पाई जाती हैं। परीक्षण द्वारा पता चला है कि किसी भी परिस्थिति में बौद्धिक योग्यताओं में अन्तर-सम्बन्ध रहता है। यही बुद्धि की संश्लेषणात्मकता है। थार्नडाइक का कहना है कि मानसिक संगठन का निर्माण सरल बौद्धिक क्रियाओं के समूह से होता हैं।

बुद्धि-माप
(MEASUREMENT OF INTELLIGENCE)

यदि बुद्धि कुछ है तो उसे मापा भी जा सकता है। यह मनोवैज्ञानिकों की सामामान्‍ धारणा है। हिलगार्ड ने बुद्धि परीक्षण आन्दोलन के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है :—

"बुद्धि-परीक्षण जो कुछ मानता है वही बुद्धि है।" बुद्धि का रुचि से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः मार्गोपदेशन के लिए बुद्धि-लब्धि (I. Q.) का जानना आवश्यक है। हम यहां बुद्धि परीक्षण की कुछ विधियों का उल्लेख करते हैं :—

बीने-साइमन-बुद्धि-परीक्षण (Bint-Simon Intelligence Test) सन् १६०० में बीने महोदय फ्रान्स में, बच्चों की, मनोवैज्ञानिक क्रियाओं का अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने बालकों में पाई जाने वाली भिन्नता को समझ लिया और सुझाव रक्खा कि यदि पढ़ने वाले बालकों को बुद्धि-लब्धि के अनुसार वर्गों में बाँट लिया जाये तो पठन-पाठन क्रिया अधिक सफल हो जाय। बीने ने बुद्धि नापने का मापदण्ड (Scale) निर्मित किया जो मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का एक क्रम है। बीने ने साइमन के सहयोग से इस माप-दण्ड को तैयार किया। इन परीक्षणों के अनुसार सरलतम क्रियाओ से लेकर जटिलतम क्रियाओं को एक क्रम से रक्खा गया। इस मापदण्ड का प्रयोग अल्प बुद्धि तथा औसत प्रगति करने वाले बालकों पर किया गया। इस अध्ययन के आधार पर अवस्था स्तरों (Age levels) के लिए प्रतिमान (Norms) स्थापित किये गये।

बीने-साइमन परीक्षा-प्रणाली के अनुसार विभिन्न अवस्थास्तर के बालकों के लिए निम्न प्रश्नावलियाँ होती हैं। इन प्रश्नों के उत्तर के आधार पर बालक का बौद्धिक स्तर नापा जाता है। उदाहरण के लिए हम चार वर्ष की अवस्था वाले बालकों से किए जाने वाले प्रश्नों को निम्न प्रकार से लिखते हैं :—

(i) तुम लड़के हो या लड़की ?

(ii) कुंजी, चाकू और सिक्का दिखला कर—यह क्या है ?

(iii) तीन संख्याओं को दुहराना ।

(iv) कागज पर खिंची हुई चार रेखाओं की तुलना करना

बीने ने अपनी प्रश्नावली में वस्तुओं से अधिक शब्दों पर ध्यान दिया है। अतः भाषा ज्ञान रखने वाला बालक इस परीक्षण में अधिक योग्य प्रमाणित हो सकता है। जब कि व्यावहारिक ज्ञान रखने वाला बालक मन्द बुद्धि वाला प्रमाणित होगा। आयु के आधार पर प्रश्नों का वर्गीकरण मनोवैज्ञानिक नहीं है, क्योंकि बुद्धि का विकास कभी धीमा और कभी तीव्र होता है। फिर भी बीने-साइमन परीक्षण से तीन बातों का पता चलता है (i) प्रयोजनता (ii) नई परिस्थितियों में अपने को व्यवस्थित करने की योग्यता। (iii) आत्मालोचन करने की शक्ति।

व्यावसायिक निर्देशन के लिए बुद्धि का यथार्थ परिज्ञान आवश्यक है। परन्तु किसी को परामर्श देते समय केवल बुद्धि पर ही नहीं ध्यान देना चाहिएं बल्कि उसकी शारीरिक बनावट, चरित्र ज्ञान और विशिष्ट योग्यताओं पर भी ध्यान रखना चाहिए। सामान्य शिक्षा के समाप्त होते ही बालक की बुद्धि परीक्षा करानी चाहिए और उसकी योग्यता तथा रुचि के अनुसार व्यवसाय में लगा देना चाहिए।

रुचि-परीक्षण (INTEREST TEST)

मार्ग निर्देशन के लिए किसी भी व्यक्ति की रुचि का जानना अनिवार्य है। रुचि वह सुखद भावना है, जिसके अनुसार हमें किसी क्रिया के करने अथवा किसी उद्देश्य की प्राप्ति में आनन्द मिलता है। रुचि के कारण कोई कार्य उत्साह और लगन के साथ होता है। किसी भी काम में रुचि रखने वाला व्यक्ति उसी काम में रुचि न रखने वाले व्यक्ति से अधिक सफलता प्राप्त करता है। रुचि का पता लगाने के निम्न उपाय हैं :—

सबसे सरल विधि तो यह है कि सीधे व्यक्ति से पूछा जाय कि उसकी रुचि क्या है ?

दूसरा उपाय यह है कि उसके कार्य-कलाप जो देखकर उपकी रुचि का पता लगाया जाय ।

और, तीसरी विधि यह है कि विभिन्न विषयों में व्यक्ति की जानकारी के अनुसार ऊसकी रुचि निर्धारित की जाय ।

पहली विधि सबसे सरल और सफल प्रमाणित हुई है । इसके अतिरिक्त एक ऐसी तालिका तैयार की जाय, जिसमें लगभग सभी प्रकार की रुचियों का उल्लेख हो, जैसे व्यावसायिक, शैक्षिक विषय, मनोरजंन, वैयक्तिक विशेपतायें विभिन्न क्रियाओं के क्रम का महत्त्व आदि । इस तालिका से लोगों की रुचि का पता चलता है । आधुनिक मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि व्यक्ति की कार्यक्षमता और उसकी रुचि में परस्पर सम्बन्ध होता है । हमारा विचार है कि व्यक्ति की रुचि पर सर्वाधिक प्रभाव सामाजिक प्रेरणा एवं सम्यता का पड़ता है ।

कार्य-क्षमता परीक्षण (APTITUDE TEST)

कार्यक्षमता से अभिप्राय "सींखने की क्षमता" से है । व्यक्ति का वह गुण जिसके अनुसार वह विशिष्ट ज्ञान, कार्य-योग्यता और नई परिस्थिति में अभियोजन स्थापित करता है, वही कार्यक्षमता है । उसकी कार्य क्षमता-परीक्षण से पहले हमें व्यवसाय का विश्लेषण कर लेना चाहिए और उसी के अनुसार परीक्षण करना चाहिए । कुछ प्रमुख परीक्षण इस प्रकार हैं :—

(१) यॉंत्रिक सूत्रपरीक्षण (Test of Machanical Comprehension) यंत्र के संचालन में किसी व्याक्ति में कितनी सूझ-बूझ है, इसकी जचाँ करने के लिए व्यक्ति से यांत्रिक वस्तुओं पर प्रश्न किये जाते हैं । चलने फिरने वाले जानवरोंसे प्रारम्भ करके रेलगाड़ी, हवाई जहाज मोटर आदि यांत्रिक वस्तुओं के बारे में पूछा जाता

(२) आकार सम्बन्ध परीक्षण (Form Relation test) व्यक्ति के सामने कुछ ऐसे वर्ग, घन, आयत, के अधूरे चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं और उसी से मिलते जुलते टुकड़े रख दिये जाते हैं। उन टुकड़ों की सहायता से व्यक्ति चित्र के अधूरे अंशों को पूरा करता है। टुकड़ों को बैठाने में स्वतंत्रता रहती है। उन्हें बैठाने की शुद्धता के आधार पर अंक मिलते हैं।

(३)मिनेसोटा कागज़ आकार फलक (Minnesota Paper form Board)इस विधि के अनुसार चौंसठ अव्यवस्थित ज्यामितिक आकृतियाँ दी जाती हैं, उन्हें व्यवस्थित करने के लिए पाँच समाधान दिये जाते हैं, जिनमें केवल एक ही ठीक होता है। बीस मिनट में उन अव्यवस्थित आकृतियों को व्यवस्थित करना रहता है, जिन पर अंक मिलते हैं।

व्यक्तित्व को मापने की विधियाँ

(METHODS OF MEASURING PERSONALITY)

मार्गोपदेशन के लिए व्यक्तित्व का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है व्यक्तित्व के मापने की विधियाँ निम्नलिखित हैं :—

(१)व्यक्ति इतिहास (Case History) इस विधि के अनुसार व्यक्ति का वंश इतिहास सामाजिक वातावरण, शारीरिक अवस्था, शिक्षा आर्थिक अनुभव, आदत, अभियोजन का ढंग आदि का व्योरा प्राप्त करके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने वाली बातों का उल्लेख किया जाता है। इस विधि के प्रयोग से व्यक्ति की आन्तरिक स्थिति का भी पता चलता है।

(२) साक्षात्कार (Interview) वैयक्तिक विशेषताओं का पता लगाने के लिए साक्षात्कार एक सरल विधि है। साक्षात्कार दो प्रकार का होता है—(अ) स्वतंत्र साक्षात्कार (Free Interview) जिसके अन्तर्गत कोई पूर्व योजना नहीं होती बातों-बातों में ही साक्षात् कर्त्ता व्यक्ति के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेता है। इस स्थिति में व्यक्ति अपने हृदय की बातें खोलकर रख देता है। (ब)नियंत्रित साक्षात्कार—

(Contorolled Interview) इस विधि के अनुसार प्रश्नावली (Scheduled) पहले से तैयार रहती है और व्यक्ति को उसका उत्तर देना रहता है। इन दोनों विधियों से व्यक्तित्व की विशेषताओं का पता चलता है।

(३) श्रेणी मूल्यांकन (Rating Scale) वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार सत्य के अंश (Degree) होते हैं परन्तु अमनोवैज्ञानिक पद्धति द्विवर्गाश्रित (Dichotomous) है। द्विवर्गाश्रित विचार में किसी वस्तु का भाव या अभाव है जब कि वास्तविक भाव और अभाव की श्रेणियाँ हो सकती हैं। जैसे कोई व्यक्ति ईमानदार है तो किस श्रेणी का ईमानदार है। यदि वेइमान है तो किस श्रेणी का। श्रेणियों पता लगाना ही श्रेणी-मूल्यांकन है। हम ईमानदारी के गुण की श्रेणी इस प्रकार बना सकते हैं :—

ईमानदारी

अनुपस्थित बहुतकम कम औसत अधिक बहुत अधिक अत्याधिक
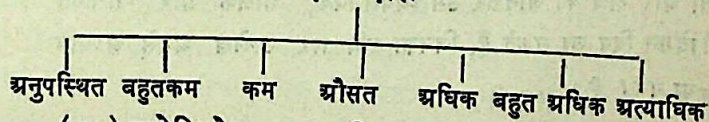
(४) मनोविश्लेषणात्मक परीक्षण (Psycho Analytic-Tests) इस विधि के अनुसार व्यक्ति के अचेतन मन में छिपी हुई वासना, इच्छा और भावनाओं का पता लगाया जाता है। अचेतन मन हमारे चेतन व्यवहार को प्रभावित करता है। इसके अध्ययन के लिए स्वप्न विश्लेषण (Dream Analysis) मुख्य है।

(५) परिस्थिति परीक्षण (Situation Tests) इस परीक्षण के अन्तर्गत व्यक्ति की प्रतिक्रिया को एक विशेष परिस्थिति में रखकर जाँच की जाती है। हार्टशर्न और मे (Hortshorne and May) ने बालकों के ऊपर एक परीक्षण इस प्रकार किया :—

एक कमरे में रक्खे हुए बक्से में बच्चों से दान के लिए कुछ पैसे डालने के लिए कहा गया। कुछ बच्चों ने पैसे डाले और कुछ ने

उसमें से ही चुरा लिए। इस तरह एक परिस्थिति विशेष में वैयक्तिक गुणों का परीक्षण हो गया।

(६) आरोपणात्मक पद्धतियाँ (Projective Methods) आरोपणात्मक विधियों में रार्शा और मर्रे (Rorschach and Murray) के रोशनाई परीक्षण (Ink-Blot test) अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस परीक्षण में प्रयोज्य के ऊपर स्याही के धब्बों का प्रयोग होता है। धब्बों के देखने का जो प्रभाव पड़ता है, उसको सुनने के बाद मनोविश्लेषक उसका विश्लेषण करते हैं। होता यह है कि प्रयोज्य अपनी भावनाओं, इच्छाओं और संवेगों को उन धब्बों पर आरोपित करके देखता है। इस प्रकार उसकी आन्तरिक स्थिति का पता चलता है।

इस अध्याय में हमने मनोवैज्ञानिक परीक्षण द्वारा व्यक्ति की भिन्नता और विशेषताओं के जानने की विधियों पर प्रकाश डाला है। व्यक्ति की क्षमता और रुचि को जानकर उसे व्यवसायिक, शैक्षिक और व्यक्तिगत मार्गोपदेशन दिये जा सकते हैं, जिनका सविस्तार उल्लेख अगले अध्याय में किया गया है।

अध्याय
: ३ :
वैयक्तिक, व्यावसायिक एवं शैक्षिक मार्गोपदेशन
Personal, Vocational, and Educational Guidance

मनुष्य की आवश्यकतायें अनेक प्रकार की होती हैं आर्थिक, समाजिक, शारीरिक एवं नैतिक आदि। इनकी पूर्ति के लिए वह अपने परिवेश (Environment) के अन्दर अविरल प्रयन्त किया करता है। परिवेश विघ्न भी उपस्थित करता है। अतः विघ्न की उपस्थिति में व्यक्ति किस प्रकार सार्थक व्यवहार करे, यही मार्गोपदेशन की समस्या है। कुछ विघ्न दूर किये जा सकते हैं, कुछ को छोड़कर नये मार्ग अपनाये जा सकते हैं। जीवन में कुछ ऐसे भी विघ्न आते हैं, जिससे समझौता करना पड़ता है। विघ्न के समक्ष अभियोजन स्थापित करने की निम्नलिखित प्रक्रियायें हैं, जिनका सविस्तार वर्णन चौथे अध्याय में किया जायेगा।

(१) विघ्नोपस्थिति (२) प्रत्यक्ष आक्रमण (३) उपयोगी पर्याय (४) निषेधात्मक पर्याय।

जिस व्यक्ति के समक्ष विघ्न उपस्थित होते हैं, उसे हम समस्या-व्यक्ति कहेंगे। समस्या व्यक्ति के मार्गोपदेशन के लिए हमें उन प्रभावों का अध्ययन करना आवश्यक होगा, जिनसे उसका चरित्र निर्मित हुआ है। अतः किसी को राय देने से पहले उसके जीवन का इतिहास, शारीरिक स्वास्थ्य,

ग्रंथियों की क्रिया और सांस्कृतिक परिवेश का ज्ञान अत्यावश्यक है। समस्या-व्यक्ति का अध्ययन उसके बचपन के इतिहास से करना चाहिए— बचपन में उसके समक्ष कैसी समस्यायें रही है. उसपर उनकी क्या प्रति-क्रिया हुई है, उसकी मानसिक आदतें क्या-क्या हैं? देखा गया है कि बचपन में पड़ी हुई मानसिक आदतें या व्यवहार के ढाँचे जीवन पर्यन्त रह जाते हैं। परिस्थितियों के प्रति जो संवेदात्मक प्रतिक्रिया बचपन में होती है, वही बाद में भी हुआ करती है। इसे स्थिरीकरण (Fixation) कहते हैं। एक लड़की का पिता उसे बहुत डाँटा फटकारा करता था, इस लिए लड़की उससे घृणा करती थी और साथ ही उसका प्रेम भी प्राप्त करना चाहती थी। अपने से बड़ों के प्रति उसका यही व्यवहार स्थिर हो गया। नौकरी करने पर कुछ दिनों तक वह अपने मालिक से खुश रही परन्तु उसे भी पिता तुल्य समझ कर झगड़ने लगी। यही व्यवहार पति, मित्र आदि सबके प्रति हो गया। वह अपने पिता और अन्य पुरुषों में अन्तर नहीं कर पाती थी। बचपन का जमा हुआ प्रभाव जीवन पर्यन्त उसके व्यवहार को प्रभावित करता रहा। एक बालक, जो अपनी माँ का प्यार प्राप्त करना चाहता था, परन्तु उसकी छोटी बहन उसके प्यार को बँटाती थी, ऐसा दृष्टिकोण बना लिया, जिसके अनुसार औरतों का प्रेम प्राप्त करने के लिए अधिक प्रयत्न करता और कम आयु की लड़कियों से दूर भागता।

तीव्र बुद्धि का व्यक्ति अपने परिवेश से सफलता पूर्वक अभियोजन स्थापित कर लेता है, जब कि मन्द-बुद्धि का व्यक्ति ऐसा नहीं कर पाता। विघ्नों के साथ अभियोजन स्थापित करने के साथ-साथ व्यक्ति की बुद्धि भी बढ़ सकती है। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि तीव्र बुद्धि का व्यक्ति अच्छी प्रकार अभियोजन स्थापित ही कर ले। अभियोजन, गम्भीर-चिन्तन, साधन तथा स्वस्थ जीवनोद्देश्य के कारण होता है।

मार्गोपदेशन के द्वारा व्यक्ति की योग्यता,—कार्य-क्षमता, रुचि व्यक्तित्व आदि को जानकर, उसका इस प्रकार निर्देशन किया जाता है कि वह अपने गुणों का अधिकतम उपयोग कर सके। जीवन के विभिन्न क्षेत्र, जैसे शिक्षा, व्यवसाय, मनोरंजन, व्यक्तित्व के विकास आदि के लिए मार्गोपदेशन प्राप्त किया जाता है। मार्गोपदेशन के लिए साक्षात्कार (Interview), प्रश्नावली (Questionnaire), व्यक्ति विश्लेषण (case study), मनोवृत्ति-परीक्षण (Attitude measurement) आदि का सहारा लिया जाता है।

वैयक्तिक मार्गोपदेशन
(PERSONAL GUIDANCE)

मनुष्य के व्यक्तित्व पर उसकी मनोवैज्ञानिक विशेषतायें यथा सामाजिक स्थिति में उसके व्यवहार ही प्रकाश डालते हैं। संसार से निर्लिप्त रह कर जो व्यक्ति यथा शक्ति, तथा रुचि के अनुसार, सांसारिक कार्यों को करता है उसी का व्यक्तित्व सुदृढ़ होता है। अच्छे व्यक्तित्व के लिए यह भी आवश्यक है कि उसके मस्तिष्क में परिस्थितियों का स्पष्ट चित्र वर्तमान हो और उसको जो कार्य करना है वह भी स्पष्ट हो, तभी उसके अन्दर साहस आता है। उसको अपने कार्य और चिन्तन को निश्चित उद्देश्य की ओर ले जाना चाहिए। नीचे हम कुछ मनोवैज्ञानिक विशेषज्ञों की सम्मतियाँ दे रहे हैं, जिस पर अमल करने से व्यक्तित्व में सुधार हो सकता है।

(१) अन्य व्यक्तियों के प्रति चैतन्य रहना चाहिए तथा उनके कार्य-कलापों, पर दृष्टि रखनी चाहिए। दूसरे व्यक्ति में वास्तविक रूप से रुचि लेनी चाहिए। उस व्यक्ति के रुचि के अनुसार बातें करनी लाभदायक है।

(२) यह समझना चाहिए कि दूसरे व्यक्ति आपको पसन्द करते हैं। यदि आप दूसरों पर यह प्रकट करेंगे कि आप उनसे सम्बन्ध रखना चाहते हैं, तो वह भी आप से सम्बन्ध स्थापित करना चाहेंगे।

(३) प्रत्येक मिलने वाले का नाम आदर से पुकारना चाहिए तथा अभिनन्दन का उत्तर मुस्करा कर देना चाहिए।

(४) दूसरे के स्वाभिमान को ठेस नहीं पहुँचानी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के गुणों की सच्चे हृदय से प्रसंशा करना चाहिए। जिन बातों से उनमें हीनता की भावना जाग्रत होती हो उसे नहीं कहना चाहिए।

(५) अपनी त्रुटियों को स्वीकार करना चाहिए। यदि कभी कोई भूल हो जाय और दूसरे उसका परिहास करें तो वैसा करने देना चाहिए। आप में जो कमियाँ है, उन्हें स्वीकार कीजिए। ऐसा करने से दूसरे आप को अच्छा सम्बन्ध रख सकते हैं।

(६) बात करते समय 'मैं' शब्द का प्रयोग कम करना चाहिए। यथासम्भव' आप'- 'आपका', 'उसका' आदि शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। सामाजिकता का लक्ष्य यह हैं कि जहाँ तक सम्भव हो दूसरों से विचार प्राप्त करना चाहिए।

(७) अपने मित्रों की प्रशंसा करनी चाहिए। मित्रों से दया, प्रेम और सहायता का सम्बन्ध रखना चाहिए। यदि कुछ मित्र धोखा दें, तब भी विचलित नहीं होना चाहिए। क्योंकि सम्पूर्ण रूप से मानव स्वभाव बहुत अच्छा है।

(८) अपने वातावरण को बदलते रहना चाहिए। अवसर प्राप्त करके छुट्टी लेनी चाहिए, पर्यटन करना चाहिए। अपने वस्त्र, फर्नीचर मकान, कार आदि के रंगों में परिवर्तन करते रहना चाहिए।

(९) सफल व्यक्तियों के सम्पर्क में रहना चाहिए।

(१०) दूसरों का छिद्रान्वेषण नहीं करना चाहिए। नम्र-व्यवहार का होना चाहिए। दूसरों के विचारों का आदर करना चाहिए तथा अनुचित वाद-विवाद से बचना चाहिए।

मार्गोपदेशन की समस्या

मार्गोपदेशन आधुनिक शिक्षा का मुख्य अंग है। उन्नीसवीं शताब्दी में मनुष्य के विवेक और बुद्धि पर हमारा अन्धविश्वास था। जिसके पास बुद्धि

होगी उसे किसी प्रकार के मार्गोपदेशन की आवश्यकता नहीं। परन्तु बीसवीं शताब्दी में हमारा विश्वास शुद्ध बुद्धिवाद पर से उठ चुका है। आधुनिक युग के शिक्षा-शास्त्री मार्गोपदेशन के महत्व पर विशेष बल देते हैं। हमारा तो मत है कि इस युग में समाज के किसी भी पक्ष को 'अपने' आप पर नहीं छोड़ना चाहिए, बल्कि हर एक का मार्गोपदेशन द्वारा उद्देश्य पूर्ण विकास होने देना चाहिए। मार्गोपदेशन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए किसी प्रकार का दमन नहीं करना चाहिए। मार्गोपदेशन पर ध्यान न देने से, शिक्षा प्रणाली केवल ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया हो जाती है। शिक्षा-संस्थाओं में ज्ञान बिकने लगता है और शिक्षक भी पुस्तकों से चिपटा रह जाता है। विद्यार्थी और शिक्षक का सम्बन्ध भी समान हो जाता है। नया दृष्टिकोण है, ज्ञान को व्यावहारिक जीवन में लागू करना। यही ज्ञान का मानवीकरण भी है। अतः मार्गोपदेशन का महत्त्व स्पष्ट है।

मनोविज्ञान व्यक्ति की भिन्नता पर बल अवश्य देता है, परन्तु व्यक्ति को अलग इकाई नहीं मानता। व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से सम्बन्वित होता है। उसके ऊपर राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक भौगोलिक आदि परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। अतः मार्गोपदेशन करने के लिए इन सभी परिस्थितियों का ज्ञान आवश्यक है। तभी हम व्यक्ति को उचित मार्ग दिख सकते हैं। मार्गोपदेशन अन्य विज्ञानों से सम्बन्धित एक विश्लेषणात्मक प्रक्रिया है' जिसमें कला और विज्ञान का वास्तविक समन्वय होता है।

अनन्त काल से मनुष्य अपने आप और इस संसार को समझने की चेष्टा कर रहा है। वह चाहता है कि अपने परिवेश से भलीभांति अभियोजन स्थापित करके सन्तुष्ट जीवन व्यतीत करे। उसकी समस्यायें ऐसी हैं, जो किसी एक विज्ञान के द्वारा सुलझाई नहीं जा सकतीं। अतः विभिन्न विज्ञानों के अन्तर-सम्बन्ध द्वारा ही अभियोजन सम्भव है।

मार्गोपदेशन, शिक्षा के अन्तर्गत एक नया प्रयास है, यद्यपि इसकी जड़ें पुरानी हैं। मर्गोपदेशन का यह उद्देश्य होता है कि व्यक्ति अपने को समझे, परिवेश को समझे और जहाँ तक हो सके दोनों से अधिकाधिक सन्तुष्टि प्राप्त करने का प्रयत्न करे। मार्गोपदेशन व्यक्ति को परिवेश से कुशल अभियोजन स्थापित करने में सहायक होता है। इसका एक मुख्य उद्देश्य यह भी है कि व्यक्ति समाज को जो सर्वाधिक अनुदान दे सकता हो, समर्पित करे। मार्गोपदेशन का क्षेत्र केवल शिक्षा और व्यवसाय तक ही सीमित नहीं है बल्कि व्यक्ति के विकास की प्रत्येक अवस्था तथा उसकी सभी समस्याओं पर निर्देशन देना है। मार्गोपदेशन की जड़ें, जीव-विज्ञान, मनोविज्ञान और सामाज-शास्त्र के अतिरिक्त धर्म, कला और दर्शन में भी पाई जाती हैं।

मार्गोपदेशन की मान्यतायें

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि किसी व्यक्ति को हम अन्य व्यक्तियों सम्बन्ध में रख कर ही मार्गोपदेशन से लाभान्वित कर सकते हैं। मार्गोपदेशन के लिए व्यक्ति को समाज में रखकर देखना होगा। अतः दो मान्यताओं को स्वीकार करना आवश्यक है।

१—व्यक्ति का महत्त्व—हमें प्रत्येक व्यक्ति को भावपुर्ण मानना चाहिए। किसी भी सभ्यता का परिचय इसी से मिलता है कि उस सभ्यता में व्यक्ति को कितना महत्त्व दिया जाता है। जब तक प्रत्येक व्यक्ति की महत्ता को स्वीकार करके मार्ग दिखाने की इच्छा नहीं जागृत होती, तब तक मार्गोपदेशक सफल नहीं समझा जा सकता।

२—मानव-शक्ति का सदुपयोग—यदि मानव-शक्ति का सदुपयोग करने के उद्देश्य न हों तो मार्गोपदेशन की आवश्यकता ही क्या है? हम व्यक्ति को इसीलिए दिशा दिखाते हैं ताकि वह अपनी शक्ति व्यर्थ न गँवाये, बल्कि कुशल निर्देशन के सहारे अपना विकास करे। आधुनिक युग में मनुष्य की कार्य-क्षमता बड़ी तेजी से बढ़ी है, परन्तु वह

सामाजिक स्तर पर दूसरों से मिल जुल कर नहीं रह पाता। मानव-व्यवहार की इस कमी को व्यवहार सम्बन्धी विज्ञान ही दूर कर सकते हैं। इस क्षेत्र में मर्गोपदेशन की भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

भारतीय अवस्थाओं में मार्गोपदेशन

भारतीय परिस्थितियों में मार्गोपदेसन की मान्यताओं परध्यान देने की आवश्यकता तो है ही साथ ही साथ निम्न बातों पर भी ध्यान देना चाहिए—

(क) शिक्षा—स्वतंत्रता के वाद भारतवर्ष में शिक्षा का प्रसार बढ़ा है। शिक्षा संस्थाओं में, विभिन्न प्रकार की क्षमता, रुचि और चरित्र वाले विद्यार्थी, समाज के प्रत्येक क्षेत्र से आते हैं। उनका मार्गोपदेशन आवश्यक है। इसी विचार से सरकार ने वहुमुखी उच्चतर माध्यमिक शिक्षा की योजना लागू की है। इसी योजना के अन्तर्गत विद्यार्थियों को कला, विज्ञान तथा टेकनिकल आदि समूहों के पढ़ने की सुविधा रहती है। प्रत्येक विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार विषय चुन सकता है। यह योजना पैसे की कमी के कारण सुचारु रूप से नहीं चल पा रही है।

(ख) सामाजिक आवश्यकता—समस्त समाज के सन्दर्भ में मार्गोपदेशन का महत्त्व बढ़ जाता है। भारतवर्ष इस समय परिवर्तन की अवस्था से गुजर रहा है। औद्योगिक विकास हो रहा है, जीवन के पुराने मूल्य समाप्त हो रहे है और नये उनका स्थान ले रहे हैं। कार्य और व्यवसाय के नए नए क्षेत्र खुल रहे हैं। वर्तमान तथा आनेवाली पीढ़ी पर विशेष उत्तरदायित्व है। देश की ऐसी अवस्था में व्यक्ति को मार्गोपदेशन मिलना आवश्क है। मार्गोपदेशन की वैज्ञानिक-कला भारतीय समाज में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभासकती है।

(ग) किशोरावस्था की समस्यायें—परिवर्तनशील युग का प्रभाव, किसी देश के किशोर वालक वालिकाओं पर अधिक पड़ता है। हमारे देश में भी वर्तमान स्थिति का प्रभाव इस अवस्था के वालक वालिकाओं

पर गहरा पड़ रहा है। पुराने सामाजिक मूल्यों के महत्व कम होने से किशोर अपने जीवन का सन्तुलित विकास नहीं कर पाते हैं। नये मूल्य कुछ ऐसे उच्छृंखल है, जिससे किशोर का चरित्र सुदृढ़ नहीं हो पाता। आधुनिक सभ्यता की तड़क भड़क उसे बहुत पसन्द है। जो वासनाओं को जगा सके ऐसे तथ्यों को वह अति महत्व देता है। उसमें व्यक्तिवाद के लक्षण बढ़ रहे हैं। ऐसी अवस्था में मार्गोपदेशन की जितनी आवश्यकता भारतवर्ष के किशोरावस्था के बालक बालिकाओं को है उतनी किसी को नहीं है। हमारे देश में स्कूल और घर में बड़ा अन्तर है। बहुधा बालक ऐसे घरों से आते है, जहाँ शिक्षा का कोई वातावरण नहीं है। विद्यालयों में पाई हुई शिक्षा में घर द्वारा कोई पूर्ति नहीं होती। पढ़ लिखकर जो नई पीढ़ी तैयार हो रही है वह बुद्धि में अपने परिवार के पुराने सदस्यों से ऊँची होती है। अतः दोनों पीढ़ियों के बौद्धिक स्तर में अन्तर होने के कारण दोनों में संघर्ष चला करता है। पुरानी पीढ़ी वाले नई पीढ़ी वालों का उचित मार्ग-निर्देशन नहीं कर पाते। अतः उनका मार्गोपदेशन अति आवश्यक है।

(घ) वयस्कों की समस्या—(Problems of Adults) भारतवर्ष में मार्गोपदेशन की जितनी आवश्यकता किशोर को है, उतनी ही वयस्क को भी है। दोनों के बौद्धिक स्तर में अन्तर होने के कारण नई पीढ़ी वाले जब अपने पूर्वजों की श्रेष्ठता को स्वीकार करने से इनकार करता है तो वे समझते हैं कि आज की शिक्षा-प्रणाली उनके बालक बालिकाओं को गुमराह कर रही है, उनके आत्म सम्मान को भी धक्का पहुँचता है। अतः उन्हें भी मार्गोपदेशन की आवश्यकता है।

(ङ) महती शिक्षा—(Mass Education) आधुनिक भारत में सबको शिक्षा पाने का अधिकार है। अतः हर जाति, धर्म, लिंग तथा क्षेत्र के लोग शिक्षा संस्थाओं में भरती होकर शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। परन्तु वे शिक्षा से पूर्ण लाभ नहीं उठा पाते। उनका बौद्धिक स्तर तो कुछ ऊँचा अवश्य हो जाता है परन्तु उसी के अनुसार सामान्य सभ्यता

का स्तर ऊँचा नहीं उठ पाता। भारतवर्ष में महती शिक्षा का प्रचार अवश्य है लेकिन सामाजिक रूढ़ियाँ नहीं मिटी हैं। इस कारण जाति, धर्म तथा लिंग आदि सम्बन्धी मतभेद अभीतक पाये जाते हैं। महती शिक्षा के साथ मार्गोपदेशन का होना आवश्यक है।

(च) स्त्रियों की समस्या—कुछ राजनैतिक एवं सामाजिक कारणों से स्त्रियों का सम्मान समाज में ५० प्रतिशत भी नहीं रह गया था। अब धीरे-धीरे स्त्री अपने महत्त्वपूर्ण स्थान को ग्रहण कर रही है। शिक्षा और प्रशिक्षण प्राप्त करके स्त्रियाँ समाजोपयोगी कार्य कर रही हैं। उनकी स्वतंत्रता और आत्म-निर्भरता बढ़ रही है। यह एक ऐसा परिवर्तन है, जिसमें उन्हें मार्गोपदेशन की अत्यन्त आवश्यकता है। स्त्रियों के दृष्टिकोण के साथ ही स्त्रियों के प्रति जो दृष्टिकोण है उसे भी मार्गोपदेशन के द्वारा बदलना होगा। स्त्रियों की शिक्षा को पुनः संगठित करना होगा।

घरों की आर्थिक दशा गिरने के कारण शिक्षित महिलाएँ रोजगार की तरफ झुक रही हैं। मर्दों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने की इच्छा उन्हें व्यवसायिक कार्य क्षेत्र में ला रही है। अतः स्त्रियों को भी शैक्षिक और व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता है।

भारत में निर्देशन का क्षेत्र अति सीमित है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसकी आवश्यकता है। इस समस्या के विस्तार में न जा कर हमने संक्षेप में केवल मूल तथ्यों का वर्णन कर दिया है।

व्यावसायिक मर्गोपदेशन

Vocational Guidance

विद्यार्थियों को जो सामान्य शिक्षा दी जाती है उसके अन्तर्गत व्यवसायिक मार्गोपदेशन नहीं आता इतना अवश्य होता है कि विद्यार्थी व्यवसाय के चुनने की योग्यता प्राप्त कर लेते हैं आधुनिक युग में व्यवसायिक मार्गोपदेशन का विशेष महत्त्व है। प्रायः देखा जाता है कि माता-पिता अपनी

व्यवसायिक रुचि बालक के ऊपर थोपते हैं जब कि उसकी रुचि किसी अन्य कार्य में होती है। अपनी रुचि के विरुद्ध व्यवसाय अपना लेने से व्यक्ति असफल रहता है। उसके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को हानि तो पहुँचती ही है, साथ ही वह व्यवहार में झगड़ालू हो जाता है। अपने मालिक से उसकी नहीं पटती। जब कोई अभिभावक अपने अभि-भाव्य (Ward) के सम्बन्ध में व्यवसायिक मार्गोपदेशन प्राप्त करना चाहे तो उपदेशक को बिना अभिभाव्य की रुचि जाने हुए निर्देशन नहीं देना चाहिए। आजकल टेकनिकल शिक्षा और व्यवसाय की तरफ लोगों का इतना झुकाव है कि प्रत्येक बालक को लोग टेकनिकल शिक्षा की ही राय देते हैं, भले ही उसका झुकाव उधर न हो। होता यह है कि यदि व्यक्ति की अभिरुचि उस व्यवसाय में नहीं है, तो अपनी असफलता के लिए वह अन्य व्यक्ति, समाज, तकदीर, मालिक आदि को जिम्मेदार ठहराता है और हीनता की भावना से पीड़ित रहता है। शिक्षा-संस्थाओं में आजकल विज्ञान की शिक्षा के प्रति अधिक झुकाव है, परन्तु लेखकों के विचार से लगभग साठ प्रतिशत विद्यार्थी विज्ञान की शिक्षा के योग्य नहीं होते। वे वर्षों फेल होते रहते हैं। निर्देशनाभाव के कारण धन, समय, और शक्ति का अधिक अपव्यय होता है। यदि हमारे देश में भी मार्गोपदेशन केन्द्र स्थान-स्थान पर खुल जायँ, जो उन्हें उचित मार्गोपदेशन दें तो स्थिति कुछ और होगी।

मार्गोपदेशक अपने पास विभिन्न व्यवसायों की व्याख्या रखता है, उपदेश माँगने वालों का मनोवैज्ञानिक परीक्षण करता है, इतिहास की विशेषताओं को देखता है, तब उसके उपयुक्त व्यवसाय अथवा व्यवसायों की संस्तुति करता है। अच्छा यही होता है कि व्यक्ति स्वयं अपना व्यव-साय चुन ले। ऐसा करने में मार्गोपदेशक उसकी सहायता करता है।

दो प्रकार के व्यक्ति मार्गोपदेशन प्राप्ति के लिए उपस्थित हो सकते हैं—पहले वे जिन्होंने किन्ही क्षेत्रों में कुछ काम किया है। दूसरे वे शिक्षा-संस्थाओं से तुरन्त निकल कर आते हैं। पहले प्रकार के लोगों का मार्गो-

पदेशन सरल है। उनके कार्य के इतिहास को देखकर तथा उनकी रुचि और योग्यता के आधार पर मार्गोपदेशन किया जा सकता है। पर, शिक्षा संस्थाओं से तुरन्त निकले हुए व्यक्ति का मार्गोपदेशन उतना आसान नहीं।

सर्व प्रथम उस व्यक्ति में निहित क्षमता का पता लगाना होगा। रुचि के साथ-साथ रुचि को वास्तविकता में बदलने की योग्यता भी होनी चाहिए। बुद्धि परीक्षा से अभिरुचि और योग्यता का पता चलता है। व्यक्ति की रुचि और बुद्धि के परीक्षण की विधियों का उल्लेख अध्याय दो में किया जा चुका है। केवल रुचि ही नहीं वरन् व्यक्तित्व की विशेषताओं का ध्यान रखना भी आवश्यक है। व्यक्तित्व की जानकारी से व्यक्ति के सम्बन्ध में सम्पूर्ण और सर्वांगीण सूचना प्राप्त होती है। मार्गोपदेशक को सर्वप्रथम व्यक्ति की शैक्षिक पृष्ठभूमि पर ध्यान देना चाहिए। कुछ व्यवसाय ऐसे होते हैं जिनमें किसी विशेष विषय की जानकरी आवश्यक होती है, जैसे गणित, जीवविज्ञान, अर्थशास्त्र इत्यादि। बिना शैक्षिक योग्यता' के व्यवसाय विशेषमें व्यक्ति सफल नहीं हो सकता मार्ग-निर्देशक को व्यवसायों की व्याख्या करके व्यवसायों का एक शब्द कोश बनाना चाहिए और व्यक्ति की योग्यतानुसार व्यवसाय सम्बन्धी सुझाव देना चाहिए। ऐसा भी देखा गया है कि क्षणिक अभिरुचि पर महत्त्व देकर व्यावसायिक मार्गोपदेशन दे दिया जाता है। परन्तु सफलता के लिए स्थाई व्यावसायिक अभिरुचि का होना ही श्रेयस्कर है। व्यावसायिक निर्देशन के कुछ मूलाधार निम्न है :—

(१) व्यवसाय सम्बन्धी जानकारी (Knowledge of the Job) जैसे हमें यह पता लगाना चाहिए (क) कि व्यक्ति पहले नियामित रूप से किसी व्यवसाय में कार्य कर चुका है या (ख) पार्ट-टाइम या साधारण सहायक के रूप में कार्य करता रहा है। (ग) व्यवसाय के सम्बन्ध में सविस्तार जानकारी न सही परन्तु साधारण जानकारी भी रखता है या नहीं (घ) जानकारी की मात्रा औसत से कम तो नहीं है ?

(२) व्यवसाय में अभिरुचि (Interest in the Job) इसके अन्तर्गत हमें यह पता लगाना चाहिए कि :—

(क) क्या वह उस व्यवसाय में जीवन-पर्यन्त रुचि लेगा ?

(ख) क्या उसमें अत्यधिक रुचि भी लेगा ?

(ग) क्या उदासीन रहेगा ?

(घ) क्या किसी अन्य व्यवसाय के अभाव में उसी व्यवसाय को अपनाएगा ?

(३) व्यवसाय सम्बन्धी योग्यता (Ability in the Job)

(क) क्या कोई व्यक्ति किसी व्यवसाय में अत्याधिक योग्य है ?

(ख) क्या साधारतणः सफल रहेगा ?

(ग) क्या औसत श्रेणी का कार्यकर्त्ता होगा ?

(घ) क्या उस व्यवसाय में काम करने में उसे कठिनाई होंगी ?

(४) व्यवसाय सम्बन्धी प्रयत्न (Effort for the Job)

(क) इसके अन्तर्गत हमें यह पता लगाना चाहिए कि क्या व्यवित को पूर्ण विश्वास है कि उसकी रुचि का व्यवसाय मिल ही जएगा ?

(ख) क्या उसकी प्राप्ति के लिए वह लोगों से सम्बन्ध रखता है ?

(ग) क्या उस व्यवसाय के क्षेत्र के प्रमुख व्यक्तियों को जानता है ?

(घ) क्या व्यवसाय प्राप्ति के हेतु कोई प्रयत्न नहीं करता या कोई सम्बन्ध नहीं रखता ?

पूर्वोक्त बातों की जानकारी प्राप्त कर लेने के बाद किसी भी व्यक्ति की रुचि किसी व्यवसाय में जानी जा सकती है और उसका उचित मर्गोपदेशन किया जा सकता है।

शैक्षिक मार्गोपदेशन

(EDUCATIONAL GUIDANCE)

आधुनिक युग में जिन अर्थों में हम 'शिक्षा' का प्रयोग करते हैं उसका इतिहास एक शताब्दी पुराना है। विश्व की स्कूल पद्धतियों में दो बाते

समान रूप से हर सभ्य देश में पाई जाती हैं। पहली, शिक्षा के लिए संस्था के रूप में कक्षाओं में बँटे हुए स्कूल के आदर्श को विश्व भर में मान्यता मिल चुकी है। दूसरी, राज्य द्वारा शिक्षा देने का उत्तरदायित्व ग्रहण कर लिया गया है। बीसवीं शताब्दी की शिक्षा के लक्षण निम्न-लिखित है :—

(१) शिक्षा का लोकतंत्रीकरण, जिसमें शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार सार्वजनिक माना जाता है।

(२) शिक्षा का प्राविधान करने का राज्य द्वारा उत्तरदायित्व ग्रहण।

(३) शिक्षा को अध्ययन का उपयुक्त क्षेत्र और वैज्ञानिक अनुसन्धान का उपयुक्त विषय स्वीकार किया जाना।

(४) शिक्षा को किन उद्देश्यों का अनुसरण करना चाहिए इस सम्बन्ध में चिन्ता और सामाजिक मान्यताओं की सारणी में उसका उपयुक्त स्थान।

इनके अतिरिक्त बच्चों को पहले की अपेक्षा अधिक समय तक पढ़ाने की अभिभावकों की इच्छा, इस प्रवृत्ति का प्रतीक है कि जीवन स्तर की उन्नति, व्यवसाय के अवसरों की वृद्धि और समाज में गौरवपूर्ण पद पाने की अभिलाषा सामान्य रूप से लोगों में पाई जाती है।

आधुनिक शिक्षक, शिक्षा की 'विकास' (growth) के अर्थ में स्वीकार करते हैं। शिक्षा वैयक्तिक विकास की प्रक्रिया है। इसी के द्वारा, मनुष्य में जो कुछ क्षमता निहित रहती है, वह प्रस्फुटित होती है। अध्यापक उन बच्चों का मार्ग निर्देशन करता है, जो प्रतिदिन नहीं बल्कि प्रतिक्षण विकसित हुआ करते हैं। ऐसे गतिशील तथ्य का मार्गनिर्देशन करने के लिए शिक्षक को बड़ा सतर्क रहना पड़ेगा। जो शिक्षक इस गति से कदम मिलाकर नहीं चलेगा, वह असफल रहेगा। शिक्षा ग्रहण की प्रक्रिया स्वभावतः गतिशील है।

मनोविज्ञान का शिक्षा के क्षेत्र में जो सबसे बड़ा अनुदान है, वह है वैयक्तिक भिन्नता के नापने के विधेयात्मक (Objective) परीक्षण। परीक्षण द्वारा शिक्षण का अर्थ ही केवल सरल और प्रभाव पूर्ण नहीं हुआ है, बल्कि विभिन्न प्रकार की शिक्षा के लिए विद्यार्थियों का चुनाव भी आसान हो गया है। यही शैक्षिक मार्गोपदेशन का उद्देश्य है। वैयक्तिक भिन्नता के सभी आधारों का जानना आवश्यक है। शिक्षा का पुनर्गठन वैयक्तिक भिन्नता पर आधारित होना चाहिए। सभी विद्यार्थी एक धातु के बने हुए नहीं होते, न उनकी रुचि और क्षमता एक सी होती है। उनकी परिवारिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भी एक समान नहीं होती। बालक सम्बन्धी सभी विशेषताओं को जानकर ही शैक्षिक मार्गोपदेशन दिया जा सकता है।

'सीखने के सिद्धान्त' को शैक्षिक मार्गोपदेशन का प्रधान अंग समझना चाहिए। हम निम्नलिखित सिद्धान्तों का उल्लेख करते हैं।

(१) अनुप्रेरणा से सीखने का घनिष्ठ सम्बन्ध है जो लड़का जितना प्रेरित होकर सीखना प्रारम्भ करेगा, वह उतना ही अधिक सीख लेगा। शिक्षकगण बालक को प्रेरित करने के उपाय निकालते हैं, जिसमें से मुख्य है प्रतियोगिता का आयोजन। प्रतियोगिता द्वारा बालकों को पुरस्कार और उद्देश्य प्राप्त होता है। उससे बच्चों को प्रोत्साहन और प्रेरणा प्राप्त होती है। बच्चों को पढ़ाई-लिखाई सम्बन्धी अच्छे कार्य के लिए पेपर स्टार (Paper Star) देना चाहिए। परन्तु यह पुरस्कार और स्टार बच्चों को उचित अवसर पर ही देना चाहिए।

(२) उद्देश्य की प्राप्ति का प्रभाव सीखने पर पड़ता है। तात्कालिक उद्देश्य के समक्ष सीखने की योग्यता बढ़ जाती है श्रेष्ठ श्रेणी, छात्रवृत्ति अथवा ऐसे ही अन्य पुरस्कार करने के लिए बालक अधिक परिश्रम करता है। स्वस्थ प्रतिस्पर्धा से भी बालक सीखने के लिए प्रेरित होता है।

(३) परिपक्व और सुसंगठित नाड़ी-मण्डल (Neural Mat ration) सीखने की क्षमता को बढ़ाता है। इसी कारण बालक प्रारम्भ में बहुत सी बातें नहीं सीख पाता। विभिन्न अवस्था-स्तर का प्राप्त करना आवश्यक है। सीखने के लिए सर्वोत्तम स्तर कौन है, इस पर विद्वानों में मतभेद है। परन्तु, इसे सब मानते हैं कि सीखने में व्यक्तिगत भिन्नता का विशेष स्थान है।

(४) सीखते समय तनाव और सींखने के बाद आराम की स्थिति (Relaxation) में आ जाने से सीखने की योग्यता बढ़ जाती है। सीखते समय बालक को नियंत्रित आसन में रहना चाहिए और उसके बाद आराम की अवस्था में आ जाना चाहिए। सीखने के बीच-बीच में आराम कर लेने से, सीखने की क्षमता बढ़ती है।

(५) विराम विधि (Spaced Learning), अविराम विधि (Block Learning) से श्रेष्ठ है। एक घंन्टा लगातार पढ़ने से कहीं अच्छा है कि बीस-बीस मिनट के चार विराम हों।

(६) पूर्ण रीति से सीखना, आंशिक रीति से सीखने की अपेक्षा श्रेष्ठ है। किसी कविता की एक-एक पँक्ति याद करने की अपेक्षा उसे पूरी याद करना श्रेष्ठ है।

(७) किसी सामग्री को उच्च स्वर से पाठ करना मौन-पाठ से श्रेष्ठ है।

(८) प्रत्याह्वयन (Recall) से सीखने की क्षमता पाँच में सौ प्रतिसत वृद्धि होती है। पढ़ने के बाद बालक से पूछना चाहिए कि उसने क्या पढ़ा है ? इससे अधिक लाभ होगा। उसी समग्री को बार-बार दोहराने से उतना लाभ नहीं होगा।

पूर्वोक्त विधियों द्वारा हम किसी बालक को शैक्षिक निर्देशन दे सकते हैं। बालक की संवेगीय स्थिति को ध्यान में रखना आवश्यक है। मनोविज्ञान में विकलांग बालकों (handiaepped Children) के

जीवन में शैक्षिक मार्गोपदेशन के द्वारा सुख और शिक्षा का प्रकाश फैलता है। गूंगे बहरे और मानसिक रूप से दुर्बल बालकों को शिक्षित बनाकर मनोविज्ञान ने मानवता का बहुत बड़ा कल्याण किया है। मनोविज्ञान शिक्षक के दृष्टि कोण को बदल देता है। अब वह समझता है कि बालक एक ऐसी शक्ति है, जिसका मार्ग-निर्देशन किया जा सकता है। वह ऐसी आक्रामक शक्ति नहीं है, जिस पर केवल नियंत्रण और शासन किया जाय।

अध्याय
: ४ :
अभियोजन धारणा
Adjustment Concept

यदि हम उन व्यक्तियों के जीवन पर ध्यान दें जो हमारे दैनिका जीवन के सम्पर्क में आते हैं, या जिनके बारे में हम जानते सुनते है, तो हम पावेगें कि उनमें से बहुत सारे लोग वैवाहिक जीवन में असफल हैं, अच्छे माता-पिता नहीं है, नशाखोरी की आदत से ग्रस्त हैं किसी न किसी मानसिक रोग से पीड़ित हैं। उनमें से कुछ अपराधी और कुछ सफेद कालर वाले अपराधी मिलेंगे। किशोरावस्था में कुछ ऐसे बालक भी मिलेंगे जो अपराधी प्रवृत्ति के हो गए हैं और इस प्रकार के काम करते हैं जैसे चोरी करना, झगड़ना, झूठ बोलना, स्कूल से भागना, वस्तुओं को नष्ट करना तथा यौन-भटकाव आदि के कार्य करना ये सब व्यक्ति समस्य ग्रस्त हैं।

किसी व्यक्ति की समस्याओं को समझने के लिए हमें निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान देना चाहिए,

(१) प्रत्येक व्यक्ति क्रिया-प्रक्रिया करने वाला मनोदैहिक संगठन है। उसके विकास का एक ऐतिहासिक क्रम है।

(२) व्यक्ति को सर्वदा क्रियाशील रहने वाला प्राणी समझना चाहिए। वह सोते, जागते, स्वप्न देखते, आराम करते, खेलते हर समय क्रियाशील रहता है। यहाँ तक कि मरना भी एक क्रिया है; अतः पूर्णतः निष्क्रिय

व्यक्ति की हम कल्पना नहीं कर सकते।

(३) व्यक्ति का वातावरण से कैसा सम्बन्ध है? इसकी जानकारी भी आवश्यक है। व्यक्ति अपने वातावरण के कुछ तथ्यों से अभियोजन स्थापित, कर लेता है कुछ से विरोध करता है तथा कुछ से पलायन करता है। वातावरण के कुछ ऐसे भी तथ्य होते हैं, जिन्हें हम व्यक्ति के जीवन पर प्रभाव डालने वाला समझते हैं। परन्तु वास्तव में कुछ लोगों पर वे कोई भी प्रभाव नहीं उत्पन्न कर पाते। इन सबकी जानकारी रखना आवश्यक है।

अपनी क्रियाओं द्वारा व्यक्ति सन्तोष प्राप्त करना चाहता है। परन्तु बाधा उपस्थित होने पर उसके व्यवहार में तरह-तरह के परिवर्तन आते हैं। यह बात एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट हो जाएगी। एक ऐसे व्यक्ति की कल्पना कीजिए जो जंगल के बीच से होकर जा रहा हो। मार्ग की कठिनाइयों से मुठभेड़ होने पर उसमें अनेक प्रकार की प्रतिक्रियायें उत्पन्न हो सकती हैः—

(अ) उन बाधाओं पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न, (ब) उस मार्ग को छोड़कर किसी नये मार्ग की खोज, (स) अथवा हताश होरकर निष्क्रिय हो जाना।

मार्ग में बाधा उपस्थित होने पर, व्यक्ति उस बाधा से जो अभियोजन स्थापित करता है, उसे व्याघात अभियोजन (Barrier Adjustment) कहते हैं। व्याघात की स्थिति जीवन में प्रायः आया ही करती है। विद्यार्थी का जीवन बड़े आनन्द पूर्वक व्यतीत होता रहता है। वह खूब सैर-सपाटे करता है, टोलियों में मनोजंन करता है और ऐसी धारणा रखता है कि विद्यार्थी जीवन से अच्छा कोई जीवन नहीं है। परन्तु जब परीक्षा निकट आती जाती है और उसकी योग्यता के परीक्षण की तिथि निश्चित कर दी जाती है तो उसके सामने बाधा उपस्थित हो जाती

है। इस बाधा से वह चार प्रकार से अभियोजन स्थापित कर सकता है। साधारणतः जीवन में सभी बाधाओं से अभियोजन इन्हीं चार प्रकारों से स्थापित होता है :—

(१) विघ्न पर प्रत्यक्ष प्रहार करके उन्हें दूर करना-जैसे परीक्षा की तैयारी करना।

(२) अन्य उपयोगी मार्ग अपनाना—जैसे उस विषय को छोड़कर दूसरे विषय का अध्ययन, दूसरे विद्यालय में प्रवेश या पढ़ाई छोड़कर नौकरी या व्यवसाय कर लेना।

(३) निषेधात्मक मार्ग अपनाना जैसे-परीक्षा में अनुचित साधनों का प्रयोग करना, बीमारी का बहाना, शिक्षकों की निन्दा करना या परीक्षा में संलग्न विद्यार्थियों को चिढ़ाना।

(४) निषेधात्मक विचारों की बढ़ी हुई अवस्था में अपने स्वयं को किसी उपन्यास या चल चित्र का नायक समझ कर अपनी समस्याओं को भूल जाना अथवा आत्म हत्या का विचार करना।

जो व्यक्ति विघ्न पर प्रत्यक्ष प्रहार करते हैं, वे अपने अन्दर प्रायः सभी परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने की क्षमता का अनुभव करते हैं। उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली एवं सुदृढ़ होता है। परन्तु कभी-कभी अन्य उपयोगी मार्ग ढूँढ़ लेना हीं सबसे अच्छा अभियोजन है। वह उद्देश्य जो अव्यावहारिक हो, जिसको पूर्ति कुछ कारणोंसे असम्भव हो, उसे छोड़ देना ही उचित है। विघ्न से पलायनकरने की प्रवृत्ति हानिकारक होती है। इसके कारण व्यक्तित्व कमजोर हो जाता है। विघ्न से भागने की प्रवृत्ति तो सब में ही होती है परन्तु दृढ चरित्र का व्यक्ति पहले और दूसरे मार्ग को अपनाता है तथा दुर्बल चरित्रवालाव्यक्ति तीसरे और चौथे मार्ग को। जो व्यक्ति प्रत्यक्ष प्रहार का तरीके अभ्यस्त होता है, उसमें कठिन कार्य को सम्पन्न करने की क्षमता अधिक होती

है। विघ्न से संघर्ष करते समय उसमें नई क्षमता अधिक होती है। विघ्न से संघर्ष करते समय उसमें नई क्षमता और कुशलता आ जाती है। नैराश्य की स्थिति में व्यक्ति संवेग प्रेरित होकर किसी नए मार्ग को अपनाता है, उसका व्यवहार अचेतन मन से प्रेरित होता है और असंगठित रहता है। नैराश्य से उत्पीड़ित व्यक्ति अपने ही लिए नहीं वरन दूसरों के लिए भी समस्या बन जाता है।

व्याघात

(BARR IER)

व्याघात उस स्थिति को कहते है जिसके उपस्थित होने पर व्यक्ति में क्रोध, अयोग्यता और हीनता की भावना उत्पन्न होती है। किसी न किसी रूप में उस बाधा से वह विचलित हो जाता है। बाधायें दो प्रकार की होती हैं—(अ) वे बाधायें जो क्षमता के अभाव के कारण उपस्थित होती हैं।

(आ) वे समस्यायें, जो अकस्मात वस्तुस्थिति में परिवर्तन होने के कारण उपस्थित होती हैं। पहले प्रकार के विघ्न में ऐसी स्थितियाँ आती हैं जैसे खराब स्वास्थ्य, 'पगुंता, लम्बी बीमारी, रंग-अन्धापन, पैर का सपाट तलवा आदि। ये वे बाधायें हैं जो व्यक्ति की कार्य क्षमता को कम कर देती हैं दूसरे प्रकार की बाधायें वे हैं जो असुरक्षा की भावना बुरी आदतें, प्रशिक्षण की कमी, हीनता की भावना, सामान्य बुद्धि का स्तर नीचा होना आदि कारणों से उत्पन्न होती हैं। जो विघ्न हमारे यथा-शक्ति प्रयत्नों के पश्चात् भी दूर नहीं हो पाते वे बड़े कष्ट दायक होते हैं। बाधाओं का सामना करने वाले व्यक्ति का बाधाओं के प्रति दृष्टिकोण सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य है। कुछ लोगों के लिए बड़ी से बड़ी बाधा हतोत्साहित करने वाली नहीं होती, परन्तु कुछ लोग साधारण बाधा से भी निराश हो जाते हैं।

अन्य उपयोगी पर्याय

SUBSTITVTE ACTIVITIES OF POSITIVE VALUE

विश्व के बहुत से महान व्यक्ति विभिन्न प्रकार की व्यक्तिगत समस्याओं से घिरे रहते हैं। जैसे नैपोलियन पेट के अलसर का मरीज़ था, स्टीवेन्सन और कीट्स क्षय रोग से पीड़ित थे। बायरन बहुत गरीबी में पला था, अकबर अनपढ़ था, सूरदास सूर थे। एनिस्टाइन को देश निकाला कर दिया गया था, अब्राहम लिकंन की स्त्री अर्द्धविक्षिप्त थी। परन्तु, इन व्यक्तियों ने, इन कठिनाइयों के बावजूद अवने प्रयत्नों द्वारा इनके प्रभाव को उपेक्षित करके अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की करने में सफलता प्राप्त की। मानव सभ्यता के इतिहास में मानसिक रूप से अस्वस्थ लोगों ने बहुत से श्रेष्ठ कार्य किये हैं। यदि विश्व की उन्नति केवल सन्तुलित व्यक्तियों के ऊपर होती तो हम अभी तक जंगली अवस्था में नहीं रहते।

जो लोग अपने स्वयं को किसी रूप में अयोग्य पाते हैं तो उस अयोग्यता की पूर्ति के लिए दूसरे क्षेत्र में। ऐसा कार्य करते हैं कि उनकी महत्ता स्वीकार की जाये। जैसे छोटे कद का व्यक्ति बहुत गम्भीर हाव-भाव रखता है शान से रहता है, और भारी आवाज से बोलता है। ऐसे लोग आक्रमणकारी व्यवहार के भी होते हैं। अपने अहम् भाव की रक्षा के लिए वे तरह-तरह के प्रयत्न करते हैं। जब व्यक्ति, उपस्थित विघ्न को प्रत्यक्ष रूप से समाप्त नही कर पाता तो अपनी सन्तुष्टि के लिए पर्याय (Substitute) क्रियायें करता है। पर्याय क्रियायें उपयोगी अनुपयोगी दोनों होती हैं। यहाँ पर हम उपयोगी क्रियाओं का वर्णन करते हैं।

मनोवैज्ञानिकों ने अध्ययन करके यह स्थापित किया है कि जो व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करता है उसमें प्रबल आन्तरिक प्रेरणा

और संकल्प शक्ति पाई जाती है। सफलता के लिए दो बातें आवश्यक हैं (अ) एक बार निर्धारित उद्देश्य से कभी विचलित नहीं होना चाहिए (आ) उपलब्धियों से अपनी आन्तरिक प्रेरणा को सन्तुष्ट करना चाहिए। जो व्यक्ति किसी एक क्षेत्र में असफल हो जाता है, वह अन्य क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने की बहुत ज्यादा कोशिश करता है। जैसे—वकालत के पेशे में असफल होने के बाद एक व्यक्ति अच्छा अध्यापक हो सकता है। यदि असफलता की चोट गहरी है तो वह ऐसे कामों की तरफ मुड़ जाता है जिनके बारे में प्रायः लोग बहुत कम जानते हैं। यद्यपि इस कार्य का विशेष महत्त्व नहीं होता, फिर भी उस व्यक्ति को सन्तोष मिलता है कि वह ऐसा कार्य कर रहा है कि जिसके बारे में बहुत से लोग अनभिज्ञ हैं। वास्तव में वह वास्तविकता से दूर भाग कर भावनाओं की संतुष्टि प्राप्त करता है। नीचे हम उन प्रक्रियाओं का वर्णम करते हैं, जिनका परिणाम उपयोगी होता है।

सेवा-भाव-ग्रन्थि
(THE MASSIAL COMPLEX)

उग्र समाज-सुधारक जन साधारण के उन कष्टों को तुरन्त दूर कर देना चाहता है, जिन्हें वह झेल चुका है। अपने जीवन के कटु अनुभव हमारे अन्दर ऐसे भाव उत्पन्न करते हैं कि हम उसी कष्ट में दूसरों को देखना सहन नहीं कर सकते। अतः उनके निवारण के लिए हम उन्हें परामर्श और सहायता देते हैं। कभी-कभी यह भावना पूरे समाज के सुधार के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार का सेवा भाव उचित है, क्योंकि इससे सामाजिक भलाई और दूसरे के प्रति सहानिभूति उत्पन्न होती है। कटुता के भाव समाप्त होते हैं। प्रायः अमीर परिवार के बालक, जिनके माता-पिता उन्हे अपनी ही तरह सफल बनाना चाहते हैं, परन्तु वे किसी कारण सफल नहीं हो पाते तो वे दान और समाज-सुधार के द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहते हैं।

कक्षा में कुछ ऐसे बालक होते हैं, जो मारपीट शरारत और उदण्डता अधिक करते हैं। चतुर अध्यापक ऐसे बालकों को अनुशासन का उत्तरदायित्व सौंप देते हैं। ऐसा करने से वे अपने को महत्त्वपूर्ण समझते हैं और उदण्डता की मनोवृत्ति, उत्तरदायित्व की भावना में परिवर्तित हो जाती है।

ओडीपस ग्रन्थि

(ODEPUS COMPLEX)

कुछ लोगों में माता-पिता से लगाव की भावना इतनी प्रबल हो जाती है कि वे जीवन भर स्वयं को संवेगीय रूप से स्वतंत्र नहीं पाते। वे सर्वदा माँ के प्यार अथवा पिता के आश्रय पर निर्भर रहना चाहते हैं। इसी को ओडीपस ग्रन्थि कहते हैं। फ्रायड के अनुसार पुत्र अपनी माता को प्यार करता है और पिता को प्रतिद्वन्दी मानता है। इसके विपरीत पुत्री पिता को प्यार करती है और माता को प्रति द्वन्दनी मानती है। कभी-कभी एक नवयुवक ऐसी स्त्री से विवाह करता है, जो उससे आयु में अधिक होती है। ऐसे भी उाहरण हैं कि स्त्री की पहले पति की सन्तान की आयु उसके वर्तमान पति की आयु से अधिक होती है। इसका कारण यह है कि वह नवयुवक इस वृद्ध स्त्री में माँ का प्यार पाता है। जो माता अपनी सन्तान को संवेगीय रूप से स्वतंत्र और मुक्त नहीं होने देती, वह सन्तान की परिपक्वता में बाधा उपस्थित करती है। बहुत से नवयुवक इस ग्रन्थि से पीड़ित होकर उस समय तक विवाह नहीं करते जबतक उनकी माँ मर नहीं जाती।

समीकरण

(IDENTIFICATION)

नाटक देखते समय दर्शक अपना समीकरण नाटक के नायक से करता है। फुटबाल का मैच देखते समय दर्शक अपना समीकरण किसी एक

टीम विशेष से स्थापित कर लेता है। आधुनिक क्रिकेट मैच राष्ट्रीय महत्त्व के खेल हो गए है, क्योंकि हम उनमें अपने राष्ट्र की हार या जीत पाते हैं। सन्तुलित व्यक्तित्व के लिए उपयोगी समीकरण आवश्यक है। अच्छा नागरिक अपने राष्ट्र और समुदाय से अपना समीकरण स्थापित करता है, जिस युग में रहता है, उसके प्रगतिशील आन्दोलनों से अपना सम्बन्ध जोड़ता है, परन्तु कुछ लोग सनक में आकर अपने को नैपोलियन, हिटलर दुनिया का राजा इत्यादि समझने लगते हैं, यह मानसिक रोग है।

निषेधात्मक पर्याय

SUBSTITUTE ACTITIVITIES OF NEGATIVE-VALUE

जब हम जीवन को बाधाओं पर विजय नहीं प्राप्त कर पाते तो पलायन करते हैं। वास्तविक स्थिति से मुँह मोड़ कर ऐसे मनोवैज्ञानिक ढर्रे अपनाते हैं, जो प्रायः जीवनोपयोगी नहीं होते। बहुधा चित्र-कला काव्य-कला इत्यादि सीख कर उपयोगी बन जाते हैं। असफल व्यक्ति अपने को हीन समझता है और सामाजिक स्थिति से अभियोजन नहीं स्थापित कर पाता तो वह ऐसे पर्याय कार्य अपनाता है, जिससे वह वास्तविकता को स्वीकार करने से बच जाय। हीनता की भवना से पीड़ित व्यक्तियों के व्यवहार के निम्नलिखित मुख्य लक्षण हैं :—

(१) आलोचना के प्रति उत्तेजनात्मक व्यवहार—हीनता की भावना से पीड़ित व्यक्ति अपनी आलोचना सहन नहीं कर पाता। वह अपनी आलोचना के प्रति इतना अधिक उत्तेजक हो जाता है कि सड़क पर चलने वाले अनजान व्यक्ति पर भी सन्देहात्मक दृष्टि से देखता है कि कहीं वह उसकी आलोचना तो नहीं कर रहा है ?

(२) पर-निन्दा—वह दूसरों की निन्दा करके यह प्रमाणित करना चाहता है कि वे लोग उससे अच्छे नहीं। इस प्रकार वह अपना मूल्य ऊँचा समझता है।

(३) पूर्वाग्रही—वह अपने मन में पहले से ही द्वन्द्व और उपेक्षा की धारणा बना लेता है। इसलिए वह सबसे मिल-जुल कर नहीं रह पाता, केवल कुछ इने गिने मित्रों से सम्बन्ध रखता है।

(४) अपनी कमियों को उचित ठहराना—हीनता की भावना से पीड़ित व्यक्ति अपनी कमियों के कारणों की ऐसी व्याख्या करता है कि स्वयं निर्दोष रहे और दोष दूसरों के सिर पर मढ़ा जाय। जैसे कुछ विद्यार्थी निम्न श्रेणी में सफलता का कारण प्रोफेसर की दुश्मनी बताते है।

(५)चाटुकारिता-प्रियता—ऐसे व्यक्ति अपनी प्रसंशा और चापलूसी सुनना बहुत पसन्द करते हैं। कुछ हीनता की भावना से पीड़ित स्वयं को लोक-प्रिय बनाने के लिए दूसरों की चापलूसी करते हैं।

(६) एकान्त-प्रियता—ऐसा व्यक्ति सामाजिक अमान्यता से डरता है, इसी कारण अन्य लोगों से कम मिलता है।

(७) चिन्ता (Anxiety)—जब व्यक्ति स्वयं के विघ्नों को सामना करने के योग्य नहीं पाता तो उसमें चिन्ता-स्नायु मनोवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। वास्तव में उसके मन में भय बसा रहता है। सर्वदा वह किसी न किसी दुःखान्त दुर्घटना की चिन्ता किया करता है। जैसे प्रिय जन की मृत्यु, आकस्मिक दुर्घटना तथा असफलता आदि की चिन्तायें ऐसे व्यक्ति में शारीरिक लक्षण भी उत्पन्न होते हैं। साँसों का छोटा और तेज़ होना, दिल की धड़कन, अंग फड़कना, बहुमूत्र, सर में तनाव इत्यादि। काल्पनिक भय की स्थितियों में वह व्यक्ति शरण लेकर जीवन की वास्तविकता से पलायन करना चाहता है। यह विघ्नोपस्थिति के सम्मुख निषेधात्मक पर्याय है।

भय सदोपयोगी भी होता है। उससे प्रेरित होकर हम अपनी पूरी शक्ति लगाकर भय की स्थिति को दूर करना चाहते हैं। भय आन्तरिक द्वन्द्व के कारण भी उत्पन्न होता है।

परावर्त्तन
(REGRESSIGN)

हम प्रतिदिन के जीवन में ऐसे बूढ़े व्यक्तियों के सम्पर्क में आते हैं, जो अपने समय को श्रेष्ट मानकरवर्तमान को बुरा-भला कहते हैं। उनके समय में सब कुछ अच्छा था, मानव व्यवहार का स्तर ऊँचा था, परन्तु अब युवक युवतियाँ व्यर्थ उच्चखँल तथा फैशन परस्त होते हैं। ऐसे लोग वर्तमान समय से अपना अभियोजन नहीं स्थापित कर पाते और "अच्छे पुराने" दिनों की कल्पना किया करते हैं। ऐसे लोग नवीनता और प्रगति के विरुद्ध होते हैं। इन्हें अपनी बाल्यावस्था का स्वतन्त्र जीवन बहुत स्मरण आता है। ऐसे व्यक्ति अपने वातावरण से कुशल अभियोजन नहीं स्थापित कर पाते। वह स्त्री, जो अपनी घर गृहस्थी और बालबच्चों से कुशल अभियोजन नहीं स्थापित कर पाती, वह अधेड़ होने पर किशोरावस्था में पुनः पहुँचने की कामना रखती है। कुछ लोग बड़े होजाने के बाद भी बच्चों की तरह हाव-भाव प्रदर्शित करते हैं। ऐसा करके वे या तो दूसरों का आकर्षण प्राप्त करना चाहते हैं अथवा वास्तविकता से दूर भागना चाहते हैं।

प्रक्षेपण
PROJECION

प्रक्षेपण वह मनोरचना है जिसके सहारे हम अपने दोषों, दमित इच्छाओं और भावों को किसी दूसरे व्यक्ति में निहित करते हैं। इसी रचना से प्रेरित होकर अफवाहे उड़ाई जाती हैं। दूसरों में हम वे सब अवगुण देखते हैं, जो वास्तव में उन्हीं में निहित रहते हैं। उन्हे भला-बुरा कहते हैं। ऐसे समाज सुधारक, जों अपनी भावनाओं के आधार पर स्थिति का मूल्यांकन करते हैं, कभी सफल नहीं होते, क्योंकि वे वस्तुस्थिति का वास्तविक विश्लेषण नहीं कर पाते। वे अपनी धारणाओं को स्थिति पर लागू करते हैं।

दमन
REPRESSION

ऐसे कार्यजिनसे दूसरों को कष्ट पहुँचा हो, उन्हें भूल जाने को दमन (Repression) कहते हैं। यौन सम्बन्धी अनुभव, लज्जित कार्य, दूसरों को धोखा देना, तथा हानि पहुँचाने के कार्य, जिनकी स्मृति इतनी अप्रिय होती है कि उन्हें हम अपने अचेतन मन में दबा देते हैं, ये दमन की हुई भावनायें हमारे व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं। जैसे एक व्यापारी को हर समय यह चिन्ता बनी रहती थी कि वह दीवालिया हो रहा है, जब कि वास्तव में ऐसा नहीं था। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि वह व्यक्ति अपनी महिला सेक्रेटरी से विवाह करके, पलायन करना चाहता था। वह स्वयं विवाहित था। अतः यह अपराध भावना उसके उस समय के भय का कारण थी।

कभी कभी किसी के प्रति किए गए अनुचित कार्य हमारे व्यवहारों को ऐसा प्रभावित करते हैं कि हम उस व्यक्ति से कतराने लगते हैं या उसकी निन्दा करते हैं जैसे जिस व्यक्ति का कर्जा हम नहीं चुका पाते उसे बेइमान, अमानवीय, कठोर आदि कह कर उससे घृणा करते हैं। ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि किसी व्यक्ति के मन में दूसरों को धोखा देने की इच्छा दबी रहती है और वह यह देखता है कि उसके सम्पर्क में आने वाले सभी लोग दगेबाज, धोखे बाज तथा जाल साज है।

अन्तरक्षेपण
INTROJECTION

जिस मनोरचना के द्वारा किसी अन्य व्यक्ति के गुणों को हम अपने में अन्तर निहित करते हैं, उसे अन्तर क्षेपण कहते हैं। यह क्रिया प्रक्षेपण के विपरीत है। इसके अनुसार हम दूसरों में पाये जाने वाले गुणों को अपने में समझने लगते हैं। बहुधा जो लोग दूसरों की प्रसंशा करते हैं वह

वास्तव में अपने ही गुणों का उल्लेख करते हैं। यह क्रिया अचेतन मन की रचना के अनुसार होती रहती है। हम अनजाने ही दूसरों के गुणों और अवगुणों को अपने में आरोपित करते हैं।

दिवा-स्वप्न

DAYDREAMING

सन्तोष के वे तथ्य जिन्हें हम वास्तविक जीवन में प्राप्त नहीं कर पाते, उन्हें कल्पना जगत में पूर्ण होता हुआ पाते हैं। इसी को दिवा-स्वप्न कहते हैं। दिवा-स्वप्न लगभग सभी अवस्था के लोग देखते हैं, परन्तु किशोरावस्था के बालक-बालिका अधिक देखते हैं। वे सारी बातें जो वास्तविक जीवन में हमें नहीं प्राप्त हो सकीं, उन्हें कल्पनाजगत में पूर्ण होते हुए देखते हैं। इसी तरह दिवा-स्वप्न हमारी निम्न इच्छाओं को सन्तुष्ट करते हैं। :—

(अ) ऐसे दिवा-स्वप्न जो सामाजिक सम्मान, सफलता और योग्यता का नाट्य उपस्थित करते हैं।

(ब) ऐसे दिवा-स्वप्न, जिनमें व्यक्ति अपने को बड़े ही वीरता के कार्य करते हुए देखता है।

(स) ऐसे स्वप्न जिनमें व्यक्ति अपने को महान व्यक्ति के रूप में पाता है—जैसे राजा, देवता आदि।

(द) ऐसे स्वप्न जिनमें व्यक्ति अपने प्रति सहानिभूति रखने वालों को श्रद्धाजंलि अर्पित करता है।

(य) ऐसे स्वप्न जिनमें व्यक्ति अपने दुश्मनों को परास्त करता है अथवा मौत के घाट उतार देता है।

उपरोक्त स्वप्नों का नायक स्वयं वही व्यक्ति होता है, जिसे विजयी नायक दिवास्वप्न (Conquering Hero) कहते हैं।

दूसरे प्रकार के स्वप्न में व्यक्ति अपने को दुःख झेलता, परास्त होता

हुआ देखता है। वह विपत्ति में पड़ कर दूसरों की सहानिभूत प्राप्त करना चाहता है। ऐसे दिवास्वप्न का नायक पराजित नायक कहलाता है। इस प्रकार का नायक ऐसा दिवास्वप्न देखता है कि वह किसी दुर्घटना में घायल हो कर अस्पताल में पड़ा है, उसके निकट-सम्बन्धी उसे देखने आये हुए हैं, सब लोग उसपर तरस खा रहे हैं और वह सबके ध्यानाकर्षण का केन्द्र है आदि।

दिवा-स्वप्न देखना स्वाभाविक क्रिया है सभी रचनात्मक कल्पना करने वाले व्यक्ति दिवास्वप्न का सहारा लेते हैं। कवि, लेखक, वैज्ञानिक आदि अपने कार्य के सम्बन्ध में दिवा-स्वप्न देखा करते हैं, परन्तु दिवा-स्वप्न के देखने की आदत का बढ़ जाना एक प्रकार का मानसिक विकार है। इसका अभ्यस्त वास्तविकता से दूर भागकर कल्पना-जगत में शरण लेना चाहता है। वह अव्यावहारिक हो जाता हैं।

अस्वस्थ मानसिक प्रक्रिया

UNHEALTHY MENTAL PROCESS

हमारा समस्त जीवन परिस्थितियों से अभियोजन स्थापित करने का एक अविरल प्रयत्न है। कई विधियों द्वारा परिस्थितियों से अभियोजन स्थापित होता है। अभी तक हमनें अभियोजन के सम्बन्ध में दो बातें बतलाई हैं। पहली विधि है, परिस्थिति में उपयोगी कार्यों द्वारा विघ्नो का सामना करना, उन्हें बदल कर अपने अनुकूल बनाना अथवा उन्हें छोड़ कर अन्य उपयोगी कार्यं करना। दूसरी विधि है, विघ्न के उपस्थित होने पर अनुपयोगी या निषेधात्मक प्रक्रिया द्वारा सामना करना। पहली रीति से चरित्र और व्यक्तित्व सुदृढ़ होता है और दूसरी रीति से कमजोर होता है। अब हम विघ्न उपस्थिति से अभियोजन स्थापित करने की तीसरी प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हैं, जिसे मानसिक रोगों की श्रेणी में रक्खा जा सकता है। इन्हें हम अस्वस्थ प्रक्रियायें कहेंगे। अवस्थ

मानसिक प्रक्रियायें शारीरिक और मानसिक दोनों होती हैं। मानसिक रोगों के कारणों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं, परन्तु कुछ ऐसे रोग होते हैं, जिनमें शारीरिक क्रियाओं में अवश्य गड़बड़ी होती है। कुछ मानसिक रोगों का कारण सामाजिक होता है। लगभग ६०% रोगों का कारण मनोवैज्ञानिक और सामाजिक होता है। इस अध्याय में हम उन्हीं रोगों की चर्चा करेंगे, जो मनोस्नायुविकृति (psycho neurosis) और मनोविकृत (Psychosis) से सम्बन्धित हैं। प्रायः हम इन दोनों प्रकार के रोगों को एक ही समझते हैं। इन दोनो में अन्तर है। मनोविकृति से पीड़ित व्यक्ति अवास्तविकता के जगत में रहता है। मनोस्नायु विकृत व्यक्ति संसार की वास्तविकताा से सम्बन्धित है, परन्तु यथार्थ को स्वीकार करते हुए भी वह दुखी रहता है। दोनो प्रकार के रोगियों में श्रेणी का अन्तर होता है। पहले प्रकार का रोगी, अपने वातवरण से, दूसरे प्रकार के रोगी की अपेक्षा अधिक कुअभियोजित होता है।

स्नायु विकृत व्यक्ति में रोग के कुछ शारीरिक लक्षण भी पाये जाते हैं जैसे सरदर्द, पीठ का दर्द, बदहज्मी, कब्ज आदि।

मनोस्नायु रोग के कुछ प्रकार निम्नलिखित है :—

मनोस्नायु दौर्बल्य—(Neuraasthenia) मनोस्नायु दौर्वल्य रोग को स्नायु-थकावट भी कहते हैं। यह पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक पाया जाता है। सवेरे उठनें पर व्यक्ति थका-थका रहता है, दिन चढ़ने के साथ-साथ उसकी थकावट बढ़ती जाती है। किसी भी कार्य में उसका जी नहीं लगता। वह अपने में शक्ति-हीनता, अनिद्रा. मन्दाग्नि, चिड़चिड़ापन नैराश्य आदि पाता है। इन कारणों से उसके स्नायु तंत्र हर समय तने रहते हैं और थकावट महसूस होती है। उसे भूख नहीं लगती, पेट भारी रहता है। उसे सर दर्द, आँख का दर्द तथा अंगो के फड़कने की शिकायत रहती है। उसके

हृदय की धड़कने तेज हो जाती हैं। उसकी नाड़ी कभी धीमी और कभी तेज चलती है। हर समय अपने कष्टों की चर्चा करने में उसे आनन्द मिलता है। उसमें मानसिक कार्य करने और ध्यान लगानें की शक्ति कम हो जाती है।

मनोस्नायु दौर्बल्य रोगी के निम्न लक्षण है :—

(अ) सर्वदा शारीरिक थकावट का बना रहना (ब) चिड़चिड़ापन (स) किसी कार्य में ध्यान न लगा सकना (द) भावुक और बुरा स्वभाव (Moodiness) (य) आत्म–विश्लेषण तथा अपने ही ऊपर तरस खाना (र) शरीर यंत्र की क्रियाओं पर विशेष ध्यान देना तथा दर्द का अनुभव करना। जितना वह अपने दर्द पर ध्यान देता है, वह उतना ही बढ़ता जाता है।

मनोस्नायु दुर्बलता वशंगत नहीं है बल्कि यह एक प्रकार की वास्तविकता से भागने की प्रवृत्ति है। ये मानसिक द्वन्द्वों के कारण भी उत्पन्न होती हैं। कभी-कभी अजग, अधिक यौन सम्बन्ध और मद्यपान इत्यादि से भी यह रोग उत्पन्न हो जाता है। आधुनिक युग का स्पर्धापूर्ण जीवन, उद्देश्य के अभाव में, व्यक्ति में निर्थकता का भाव उत्पन्न करता है। मानसिक द्वन्द्व और भय के कारण थकावट और चिड़चिड़ापन बढ़ जाता है और जीवन भार स्वरूप हो जाता है। इस रोग को दूर करने के लिए व्यक्ति को कोई स्वस्थ जीवन उद्देश्य अपनाना चाहिए। कभी-कभी वातावरण के बदल देने से भी मानसिक दौर्वल्य का रोग दूर होता है।

सबसे मुख्य उपाय है, व्यक्ति को 'अपने आन्तरिक जीवन से बाहर भी रुचि लेने की प्रवृत्ति डालनी चाहिए। स्त्रियों को हम प्रारम्भ से ही हीन समझते हैं। अतः उनके साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि पुरुष और स्त्री के कार्य में भिन्नता होने पर भी वे अपने जीवन को उपयोगी समझें।

बाध्यता मनोस्नायु दौर्बल्य
(PSYCHAS THENIA)

यह इस प्रकार का मानसिक रोग है, जिसमें व्यक्ति एक ही विचार, कल्पना या क्रिया से निरन्तर पीड़ित रहता है। इस रोग से पीड़ित व्यक्ति ऐसे कार्य, जैसे बराबर हाथ पैर पटकते रहना, अप शब्दों को बोलना और अन्य दूसरे प्रकार के भय से पीड़ित रहना, करता है। इन बातों की निरर्थकता जानते हुए भी वह अपने को मुक्त नहीं कर पाता। उसमें संवेगात्मक तनाव रहता है, जिससे उसका मन किसी कार्य में नहीं लगता। उसे नींद कम आती है तथा भूख कम लगती है। ऐसे रोगी में अपच, 'अनिद्रा, चिड़चिड़ापन आदि बातें पाईजाती हैं। कुछ ऐसे रोगी जो आदर्शवादी और धार्मिक होते हैं, वे कभी-कभी अपने विचारों से पीड़ित होकर महान कार्य कर बैठते हैं।

चिन्ता (Worry)—आधुनिक युग में चिन्ता करने की सामान्य प्रवृत्ति लोगों में पाई जाती है। कुछ लोगों का जीवन इतना-नीरस होता है कि उसे सरस बनाने के लिए वे चिन्तित रहते हैं। स्वभावतः हमारी चिन्ता आर्थिक, मानसिक, शैक्षिक तथा सामाजिक स्तर सम्बन्धी होती हैं। चिन्ता को दूर करने के लिए प्रति दिन के कार्य तथा मनोरजंन की तालिका बना लेनी चाहिए। अपने मानसिक द्वन्दों को दूरदर्शिता के आधार पर दूर करना चाहिए।

रंगमंचीय भय (Stage Fright)—यह एक प्रकार का निषेधात्मक व्यवहार है। व्यक्ति जन समूह के बीच भाषण देने से तथा लोगों के सम्मुख बोलने से डरता है। इसका कारण यह हो सकता है कि वह अपने को श्रोताओं की अपेक्षा कम योग्य समझता है या वह समझता है कि हम अपनी बातों को उचित ढंग से नहीं कह पायेंगे। श्रोताओं पर बहुत अच्छा प्रभाव डालने की इच्छा के कारण भी यह

भय उत्पन्न होता है। रंगमंचीय भय को दूर करने के लिए वक्ता को अपनी मनोवृत्ति बदलनी चाहिए। उसे सीखने और सिखाने के उद्देश्य से भाषण देना चाहिए। प्रभाव जमाने की इच्छा से भाषण नहीं देना चाहिए। यह समझ कर भाषण नहीं देना चाहिए कि वह किसी से होड़ लगा रहा है। उसे ऐसे लोगों के बीच से भाषण देना प्रारम्भ करना चाहिए जो वास्तव में उससे कम जानकारी रखते हों।

इन रोगों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के मानसिक रोग भी पाये जाते हैं जैसे–चिन्ता, उन्माद, मनोविकृति मनोविकलता, स्थिर व्यामोह, उत्साह विषाद आदि इनके बारे में अधिक प्रकाश डालना अनावश्यक है। क्रियात्मक मानसिक रोगों के बहुत से नाम हो सकते हैं। परन्तु, उनका मूल कारण केवल एक है–वास्तविकता को स्वीकार न करना, उससे दूर भागना अथवा उससे अभियोजन न स्थापित करना।

मानसिक रोगों के निम्नलिखित मुख्य कारण है :—

(१) मनोदैहिक क्रिया में गड़बड़ी

(२) सामाजिक कारणों से उत्पन्न मानसिक द्वन्द्व।

प्रति दिन के जीवन में सामाजिक नियमों एवं घटनाओं का हमारी इच्छाओं और अभिलाषाओं से विरोध होता रहता है, जिसके कारण मानसिक द्वन्द्व व्यक्तित्व को विघटित किया करते हैं। मुख्यतः यौन, धर्म, धन, सामाजिक स्तर, युद्ध इत्यादि के विषय में द्वन्द्व उत्पन्न होते हैं।

(३) माता-पिता—बचपन से माता-पिता बालक की कुछ ऐसी मानसिक और शारीरिक आदतें डाल देते हैं, जिसके कारण वह परिस्थि-तियों से अभियोजन नहीं स्थापित कर पाता। आवश्यकता से अधिक प्यार और आवश्यकता से अधिक तिरस्कार दोनों ही से बालक का असन्तुलित विकास होता है।

(४) थकान—आधुनिक जीवन इतना संघर्षमय एवं स्पर्धापूर्ण है कि स्नायु की थकावट शीघ्र आ जाती है।

(५) नैराश्य—मनुष्य की कुछ मूल आवश्यकतायें होती हैं जैसे, भोजन, वस्त्र, रक्षा तथा सामाजिकता आदि। जब किन्ही कारणों से इनकी पूर्ति नहीं हो पाती तो नैराश्य (Frustration) के कारण उसका व्यक्तित्व विघटित होने लगता है।

(६) वातावरण से कुअभियोजन—जीवन की वास्तविकता को स्वीकार न करना, हर घटना को अपनी इच्छा के अनुसार चाहना अपनी सीमाओं को न आँकना इत्यादि कारणों से वातावरण से कुशल अभियोजन स्थापित नहीं हो पाता।

वातावरण में पाये जाने वाले विघ्नो से जब व्यक्ति अभियोजन नहीं स्थापित कर पाता है तो कभी-कभी रोगों का सहारा लेकर उनसे बचने का उपाय ढूँढ़ निकालता है। अप्रिय कार्यों से बचने के लिए बालक प्रायः सरदर्द, पेट-दर्द, आदि का बहाना करते हैं। वास्तव में उस समय उनके अन्दर इन शारिरिक रोगों के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। एक बालक, जिसका गणित का टेस्ट होने वाला था, सुबह से उसके सम्बन्ध में चिन्तित था। उसका गणित विषय कमजोर था इस लिए, वह टेस्ट से बचना चहता था। अतः उसने' जलपान करते समय यह अनुभव किया'कि टेस्ट की कल्पना करते ही उसके पेट में ऐंठन होने लगती है। उसे लगा कि जलपान पेट में गड़बड़ी उत्पन्न कर रहा है। स्कूल पहुँचते पहुँचते उसने वमन कर दिया। प्रधानाचार्य ने फोन द्वारा उसकी माँ को बुलाया। डाक्टर ने उसे आराम करने की सलाह दी। इस प्रकार वह टेस्ट से बच गया। बालक इस कारण भी बीमार हो जाता है कि बीमार बालक को सबकी सहानिभूति प्राप्त होती है। ऐसी बीमारियाँ कुछ तो शारीरिक कारण से होती हैं, परन्तु कुछ केवल

क्रियात्मक होती हैं। व्यक्ति, केवल निर्देशन द्वारा, उन्हें प्राप्त कर लेता है। जैसे चिकित्सा-विज्ञान के विद्यार्थी कभी-कभी उन चिन्हों को पाने लगते हैं, जिन्हें वे मरीजों में देखते हैं।

विघ्न से बचने के लिए व्यक्ति कुछ ऐसे क्रियात्मक रोग (Functional Ailment) उत्पन्न कर लेता है, जिसके कारण वह अप्रिय परिस्थिति से बच जाय। एक युवती को जब यह ज्ञात हुआ कि उसका मंगेतर सम्बन्ध भंग करना चाहता है तो वह इस सूचना को न सुनने के लिए बहरी हो गई। ऐसे रोगों का कोई शारीरिक कारण नहीं होता तथा वे अस्थायी होते हैं। डरपोक व्यक्ति परिस्थिति से मुकाबला न करने के लिए ऐसे लक्षण उत्पन्न कर लेते हैं।

नई-नई नौकरी करने पर कुछ कर्मचारी कुछ दिनों तक नौकरी की स्थिति से अभियोजन नहीं स्थापित कर पाते। अतः वह बीमार पड़ जाता है। बीमारी का सचेत या अचेत भय, कभी-कभी इस कारण भी होता है कि हम किसी लक्ष्य की पूर्ति में अपने को असमर्थ पाते हैं। कुछ समुदाय ऐसे होते हैं जो बीमारियों को प्रोत्साहन देते हैं। उनकी संस्कृति से प्रभावित व्यक्ति बीमारी को अपनी असफलताओं का कारण बनाकर अपने अहम् की रक्षा करता है।

(७) जीवनोद्देश्य का अभाव—लग-भग सभी गम्भीर चिन्तकों का मत है कि इस युग में व्यक्ति अस्तित्व का उद्देश्य नहीं निर्धारित कर पाता धार्मिक मूल्यों में विश्वास नहीं रह गया है, अतः प्राचीन नैतिक मान्यतायें भी उसे स्वीकार नहीं। या तो वह व्यक्तिवादी दर्शन से प्रेरित होकर, अपना जीवन, इच्छाओं की सन्तुष्टि के लिए ही व्यतीत करता है या निरुद्देश्य भटकता है। मनुष्य की इच्छाओं का कोई अन्त नहीं है। उन्हें सीमित न करने के कारण व्यक्ति मानसिक रूप से असन्तुलित हो जाता है। अमेरिका, फ्रान्स आदि समृद्धिशाली देशों में मानसिक रोगियों की संख्या

अधिक पाई जाती है। वे लोग मानसिक रोग को उच्च सामाजिक स्तर का चिन्ह समझने लगे हैं। कार्ल मैकहाइम ने बतलाया है कि हम सभी कार्य किसी न किसी उद्देश्य से करते हैं। अतः हमारे विचारों का ढाँचा 'सउद्देश्य' होता है। निरुद्देश्य जीवन हमारे लिए असह्य है। इसलिए कुछ सामान्य मानवीय अथवा धार्मिक मूल्यों को स्वीकार करना आवश्यक है। हमें सारी सृष्टि को एक ही सिद्धान्त के सूत्र में बाँधकर जीने में शान्ति और सफलता मिलेगी।

अस्वस्थ मानसिक प्रक्रिया को दूर करने के उपाय

बुद्धि का व्यावहारिक प्रयोग न करने से व्यक्ति मूलप्रवृत्तियों तथा संवेगों से प्रेरित होकर व्यवहार करता हैं जिसका परिणाम परिस्थितियों से कुअभियोजन स्थापित करना होता है। अतः सम्पूर्ण व्यवहार को बुद्धि और दूरदर्शिता द्वारा संचालित करने से सुअभियोजन स्थापित होता है और मानसिक स्वास्थ्य.बना रहता है। समझने की मुख्य बाद यह है कि मानसिक रोगी को गिरी हुई दृष्टि से नहीं देखना चाहिए, वल्कि उसको शारीरिक रोगी की ही भाँति समझना चाहिए। किसी मित्र की टाँग टूट जाने पर उसे हम अस्पताल में देखने जाते हैं, सहानिभूति प्रकट करते हैं तथा उपहार और पुष्प भेंट देते हैं। मानसिक रोगियो से भी ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए। मानसिक रोगियों के प्रति जन साधारण का व्यवहार उचित नहीं होता। मानसिक रोग प्रायः स्थायी नहीं होते और न तो वे वंशानुगत होते हैं। अभी तक कोई ऐसा तथ्य नहीं पता चला है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि मानसिक रोग पैतृक होते हैं, परन्तु फिर भी कुछ परिवार और जातियाँ ऐसी होती हैं, जिनके सदस्यो में मानसिक रोगी अधिक पाये जाते हैं। इस पुस्तक के लेखकों के मतानुसार ऐसे मानसिक रोगों का कारण सामाजिक एवं सांस्कृतिक हो सकता है। बालक ऐसे परिवार के सदस्यों के साथ रहते-रहते मानसिक रोगो-

न्मुख हो जाता है। मानसिक रोगों की ओर धीरे-धीरे झुकने लगता हैं। हमें स्वस्थ मानसिक आदतें डालनी चाहिए। मानसिक रोगों से छुटकारा पाने के लिए व्यक्ति के अन्दर तीव्र इच्छा और साहस होना चाहिए।

मानसिक रोग चिकित्सा (Psycho-Therapy)—आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान बिजली की सेंक (Electro Shock) कुछ मानसिक रोगों को दूर करता है। निश्चित मात्रा में विद्युत लहरियाँ मस्तिष्क में पहुँचायी जाती है, जिनके कारण वे मनोवैज्ञानिक बन्धन टूट जाते है जिसके कारण व्यक्ति अपने द्वन्द्वो को सुलझा नहीं पाता। व्यक्ति तब परिवर्तन प्रिय हो जाता है। इस विधि से काफी सफलता प्रात हुई है। इसके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक शल्य-चिकित्सा (Psycho-Surgery) द्वारा मस्तिष्क के फ्रन्टूल लोव में शल्य क्रिया के द्वारा उन बन्धनों को काट देते हैं, जो व्यक्ति को संवेगोत्तेजक बनाये रहते हैं। इस विधि के द्वारा बड़े आश्चर्य चकित परिणाम प्राप्त हुए और वे रोगी जो जीवन भर स्वस्थ नहीं होते, अच्छे हो गये हैं। इन दो विधियो के अतिरिक्त कुछ चिकित्सकों ने मानसिक रोगी के रक्त में कुछ ऐसे तत्व पाये हैं, जो स्वस्थ व्यक्ति के रक्त में नहीं होते। इस खोज के अनुसार वायोकेमिक चिकित्सा पद्धति के द्वारा भी इलाज सम्भव है।

कुछ मनोवैज्ञानिक धर्म को मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने में सहायक समझते हैं। धर्म व्यक्ति के समक्ष कुछ उद्देश्य रखता है और सृष्टि का भी कोइ उद्देश्य बताता है। अतः धर्म में विश्वास करने से व्यक्ति अपने जीवन को सार्थक समझता है। इस विश्वास के कारण बड़ी से बड़ी विपदा को वह झेल लेता है और अच्छे से अच्छा कार्य कर लेता है। यह बात सामान्य रूप से मान्य हैं कि आधुनिक युग में आध्यात्मिकता का ह्रास हुआ है। यदि सुसंगठित व्यक्ति का निर्माण करना हैं तो आध्यात्मिक मूलों पर विश्वास करना आवश्यक है।

धर्म अन्ध बिश्वास को भी जन्म देता है धार्मिक आदर्शों के चलने से

व्यक्ति में अपराध-भावना उत्पन्न होती है। वह स्वयं को पापी समझने लगता है। इस भय से उसका व्यक्तित्व विघटित होता है। अतः धर्म की कट्टर पंथी नीति मानसिक अस्वस्थता का कारण भी होती है। धर्म को उदार होना चाहिए।

फ्रॉयड ने मानसिक रोगों का इलाज करने के लिए मनोविश्लेषण विधि का प्रतिपादन किया है। इस विधि के सम्बन्ध में यहाँ विस्तार से नहीं लिखा जा सकता, परन्तु यह कहा जा सकता है कि यह विधि मानसिक रोगों का कारण अचेतन मन में दबी हुई इच्छाओं, भावनाओं तथा आन्तरिक द्वन्द्वो आदि को मानती है। अचेतन मन की इच्छायें मूलतः यौन सम्बन्धी तथा असामाजिक होती हैं, जिनका बीजारोपण बाल्यकाल की घटनाओं से होता है। मनोविश्लेषण विधि को सम्पूर्ण सत्य नहीं माना जा सकता। कुछ आलोचकों का कहना है कि हमारे व्यवहार दबी हुई इच्छाओं द्वारा ही नहीं प्रेरित होते बल्कि हमारे व्यवहार, अभियोजन स्थापित करने के निरन्तर प्रयत्न है। वे अचेतन मन को नहीं मानते। इनके अनुसार घटनाओं का प्रभाव नाड़ी तंत्र में ऐसा रम जाता है कि आवश्यकता पड़ने पर वह पुनर्जाग्रत हो उठता है। वे मानसिक रोगों का आधार न्यूरोनीय उत्तेजनायें और प्रतिक्रियायें मानते हैं। मानसिक द्वन्द्व सर्वदा रोग का का कारण नहीं होते। कभी-कभी तो इन द्वन्द्वों के कारण व्यक्ति में उत्साह और शक्ति का संचार होता है। मनोवैज्ञानिक विधि एकांगी है। परन्तु इस त्रुटि के होते हुए भी उसने मानसिक स्वास्थ्य के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण बातें बताई हैं।

पुनर्शिक्षण—मानसिक रोगी अनुचित मानसिक प्रक्रिया अथवा आदतों के कारण वातावरण से कुशल अभियोजन स्थापित नहीं कर पाता, वह विघ्न से या तो भागना चाहता है या भयभीत रहता है या उससे सामना करने की सामार्थ्य में अपने नहीं पाता। बुद्धि की कमी, अनैतिक कार्य, अथवा किसी शारीरिक व्यक्तिक्रम के कारण, वह अपने अन्दर हीनता की भावना

पाता है । आर्थिक एवं सामाजिक स्तर के बहुत निम्न होने के कारण वह स्वयं को हीन समझता है या उसे बहुत ऊँचा उठाने की महत्त्वाँकाक्षा में असन्तुलित हो जाता है । अत: अस्वस्थ प्रक्रिया की ओर जाने की एक निरन्तर क्रिया होती है । यदि इस निरन्तर क्रिया को उचित मार्गों की ओर मोड़ दिया जाय तो व्यक्ति मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त कर सकता है । इसी विधि को पुर्नशिक्षण कहते हैं ।

जब कोई रोगी किसी चिकित्सक के पास पहुँचता तो वह उसकी समस्याओं को समझकर उचित मार्गोपदेशन देता है । उसके जीवन के मूल्यों को और जीवनशैली को बदलता है । उसके अन्दर नैतिक साहस और स्वस्थ इच्छाओं का सृजन करता है और विचारों की जो गुत्थियाँ पाई जाती हैं उन्हें सुलझाता है । इस पुस्तक के लेखक एक ऐते व्यक्ति को जानते हैं, जो अपनी प्रेयसी द्वारा तिरस्कृत होने के बाद इतना व्यथित हुआ कि संयम से रहना छोड़ दिया । परिणम स्वरूप वह बीमार पड़कर अस्पताल में भर्ती हो गया । बीमारी की अवस्था में ही उसकी भेंट लेखक से हुई, उसकी कहानी सुनकर लेखक ने उसे यह उपदेश दिया कि जिसने उसे ठुकरा दिया उसे वह भी ठुकरादें और कुछ कवियों की पक्तियाँ तथा दार्शनिक विचार भी उसे सुनायें । रोगी का चेहरा तुरन्त चमक उठा, और उस दिन से वह निरन्तर स्वस्थता की ओर बढ़ता रहा । कुछ ही दिनों में पूर्ण स्वस्थ हो गया । अब जब कभी वह मिलता है तो अपने उस नैराश्य की स्थिति को एक बड़ी मूर्खता समझकर हँसता है । इस उदाहरण से पता चलता है कि दृष्टिकोंण के बदल जाते ही, व्यक्ति अपनी परिस्थिति से कुशल अभियोजन स्थापित कर लेता है ।

रोगियों का पुर्नशिक्षण करने के लिए मनोवैज्ञानिक उन्हें संसूचन, उपदेश, व्यावहारिक शिक्षा, दार्शनिक उपदेश और धार्मिक मूल्यों का भी सहारा लेता है । कभी-कभी पुर्नशिक्षण एक कठिन कार्यबन जाता है, क्योंकि लोग विजारों में प्रौढ़ हो जाते हैं । वे शीघ्र-अपने दृष्टिकोण को बदलने के

लिए तैयार नहीं होते हैं। लेखक अँग्रेजी के एक ऐसे प्रौढ़ प्राध्यापक को जानता है, को समाचार-पत्र में कुछ विशेष प्रकार की खबरें पढ़कर इतना उत्तेजित हो जाता था कि उसका रक्त-चाप बढ़ जाता था। लेखक ने उसे सलाह दी कि जिन घटनाओं से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, उनसे उत्तेजित होने की आवश्यकता नहीं। दुनिया को तुरन्त सुधारा नहीं जा सकता न तो सारीघ टनायें ही उसकी इच्छा के अनुकूल हो सकती हैं परन्तु वह अध्यापक इस तर्क से सहमत नही हुआ। इसके अतिरिक्त उसके स्थान पर यदि कोई कम आयु का अपरिपक्व बुद्धि वाला व्यक्ति होता तो अपना दृष्टिकोंण परिवर्तित कर लेता।

विश्राम (Relaxation) आधुनिक जीवन इतना कठोर है कि व्यक्ति सर्वदा स्नायु तनाव में रहता है। तनाव के कारण उसकी स्थिति वैसे ही होती है जैसे फूला हुआ गुब्बारा। जैसे वह हवा निकाल देने पर पिचक जाएगा, उसी प्रकार विश्राम द्वारा स्नायू-तंतु का तनाव कम कर देने पर अनेकों मानसिक रोग दूर हो जाते हैं। इसका सिद्धान्त यह है कि जब हम किसी विशेष प्रकार से चिन्तन करते हैं तो विशेष प्रकार से हमारे नाड़ी-तंत्र के अशं और माँस पेशियाँ भी व्यवहार करती है। दोनों नियंत्रित हो जाते है यदि विश्राम द्वारा तनाव कम कर देने से नियंत्रण को भंग कर दिया जाय तो उससे सम्बन्धित मानसिक प्रक्रिया भी भंग हो जाती हैं। जो लोग तनाव से पीड़ित रहते हैं, उनके कनपटी पर जलन, माथा, आँखों की पुतलियों और गालों में तनाव, गर्दन में पीड़ा और लगभग सारे शरीर में तनाव की स्थिति रहती है।

तनाव को दूर करने के लिए शरीर के अंगों को बिल्कुल ढीला करके छोड़ देना चाहिए। इसकी विधि इस प्रकार है—किसी शान्त स्थान पर व्यक्ति आराम से हाथ पैर फैलाकर लेट जाय और पहले बाँया हाथ और दाहिना हाथ, जीभ, आँखें, और कपोलों को ढीला कर दें। विशेषज्ञों का मत है कि यदि जीभ और आँखोंकी पुतलियाँ ढीली हो जाँय तो अस्सी

प्रतिशत विश्राम प्राप्त हो जाता है। सावधानी यह बरतनी चाहिए कि शरीर को ढीला करने के प्रयत्न में तनाव न उत्पन्न हो। इस क्रम को प्रातः-साँय लगभग आध घन्टे प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति को भी करना चाहिए।

कुछ लोग काम करते समय शारीरिक अंगों पर आवश्यकता से अधिक बल देते हैं। जैसे कुछ विद्यार्थी लिखते समय बहुत जोर से कलम पकड़ते हैं, आँखों को तानकर, झुककर और मुँह टेढ़ा करके लिखते हैं। यह विधि थकवाट उत्पन्न करती है और न रोकने से सामान्य आदत बन जाती है। जहाँ तक सम्भव हो कार्य करते समय भी व्यक्ति को विश्राम के आसन में रहना चाहिए।

निद्रा—विश्राम से मिलती-जुलती विधि निद्रा-विधि है। मानसिक उलझनों से ग्रस्त व्यक्ति को दवा देकर सुला दिला जाता है। वह कई दिन तक सोया रहता है। बीच-बीच में उसे जगा कर भोजन और औषधियाँ दी जाती हैं। इससे स्नायु तंतुओं का तनाव कम होता है और रोगी को आराम मिलता है।

सामूहिक विधि—इस विधि के अनुसार तीस या इससे कम मानसिक रोगियों को एक समूह में रक्खा जाता है। चिकित्सक प्रत्येक रोगी के बारे में पहले ही जानकारी प्राप्त कर लेता है, तत्पश्चात् उन्हें समूह में बैठाकर रोग के सम्बन्ध में स्वतंत्र वार्ता करने को कहता है। प्रत्येक व्यक्ति अपना अपना दुःखड़ा रोता है, उस पर प्रश्नोत्तर होते हैं। इस विधि से रोगी यह समझता है कि वह अकेला नहीं, बल्कि, अन्य व्यक्ति भी उसी की भाँति पीड़ित हैं। इस विचार से उसे सन्तोष मिलता है और धीरे-धीरे वह अपनी समस्याओं से अभियोजन स्थापित करना प्रारम्भ कर देता है। यह आयोजन सप्ताह में कई बार होता हैं और प्रत्येक बैठक में चिकित्सक उपस्थित होकर रोगियों की प्रगति की जाँच करता है। यह विधि सफल सिद्ध हुई है, परन्तु वे रोगी, जिनमें रोग का कारण अचेतन में दवा होता है अथवा जिसकी जड़ें बहुत गहराई तक गई होती

है, अपनी बातों को समूह के समक्ष रखने में झिझकते हैं। इन्हें सुधारने के लिए मनोविश्लेषण विधि उपयुक्त होती है।

सम्मोहन (Hypnosis)—इस विधि के अनुसार रोगी को अचेतन स्थिति में लाकर उसकी मानसिक उलझनों का पता लगाया जाता है। उससे उसके जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओं को पूछा जाता है। रोगी चिकित्सक की आज्ञाओं का पालन करता रहता है। इस विधि के द्वारा रोग के लक्षण ही समाप्त किये जा सकते हैं, उसके कारण नहीं दूर किये जा सकते। इस विधि के द्वारा सबको सम्मोहित भी नहीं किया जा सकता न तो सभी रोगों को ही दूर किया जा सकता है। इस विधि से रोगी आत्म-शक्ति खोकर चिकित्सक पर निर्भर हो जाता है।

मनोभिनय (Psycho-drama)—यह विधि सामूहिक विधि से भिन्न है। मनोभिनय में व्यक्ति अपनी उलझनों का वर्णन नहीं करता है बल्कि उन्हें अभिनीत करके प्रदर्शित करता है। रोगी को अपने संवेग, संघर्ष, तनाव, कल्पना तथा इच्छाओं को अभिनेता की भाँति प्रस्तुत करने की पूर्ण स्वतंत्रता दी जाती है। इस विधि के द्वारा चिकित्सक रोगी की मानसिक उलझनों को भली भाँति समझ कर उसका निराकरण करता है। अभिनय करने से उलझनें कमहो जाती हैं।

चिकित्सक को इन विधियों का प्रयोग बड़ी सावधानी से करना चाहिए। रोग और रोगी के अनुसार जो विधि सर्वाधिक उपयोगी हो सके, उसका प्रयोग करना चाहिए। रोगी को यह विश्वास दिलाना चाहिए कि मानसिक रोग स्थायी स्वभाव के नहीं होते। साधनों के द्वारा उन्हे दूर किया जा सकता है। मानसिक रोगों को दूर करने में स्वयं रोगी का प्रयत्न अधिक महत्त्वपूर्ण एवं सहायक सिद्ध होता हे।

पर्यावर्तन (Sulibmation or Substitution)—व्यक्ति की सभी महत्त्वपूर्ण इच्छायें पूर्ण नही हो पातीं। कुछ न कुछ बाधायें

उद्देश्य-प्राप्ति में अवश्य उपस्थित होती हैं। किसी एक क्षेत्र में निराश होने के बाद जब व्यक्ति किसी दूसरे क्षेत्र की ओर लिप्त हो जाता है तो उसे पर्यावर्तन कहते हैं। प्रेम में असफल हुआ व्यक्ति एक अच्छा कवि या कलाकार हो सकता है। परिवार द्वारा तिरस्कृत व्यक्ति समाज़-सुधारक या राजनैतिक कार्यकर्त्ता हो सकता हैं। परिवर्तन द्वारा व्यक्ति के संवेगीय शक्ति को किसी अच्छे कार्य की पूर्ति में लगा दिया जाता है। व्यक्ति की रुचि के अनुसार कुशल निर्देशन द्वारा पर्यावर्तन का लक्ष्य निर्धारित किया जा सकता है।

परिवेश-परिवर्तन (Environmental Change)—यदि उन परिस्थितियों को, जिनसे मानसिक विकार उत्पन्न होता है, बदला नहीं जा सकता तो उन्हें छोड़ा जा सकता है। कभी-कभी तीव्र मानसिक वेदना की स्थिति में परिवेश को त्याग देना ही उचित होता है। ऐसा करने से उत्तेजित करने वाली स्थिति दूर हो जाती है। ऐसे परिवार, जिनमें बालक का विकास उचित नहीं हो पाता उन्हें छुड़ा कर बाल सुधार-गृह में रखने से बच्चों को सन्तोषजनक परिणाम प्राप्त होता है। वहाँ पर बच्चे कुशल दाइयों की देख-रेख में परवरिश पाते हैं।

संगीत—संगीत द्वारा मानसिक रोगी को आराम पहुचाया जा सकता है। संगीत सुनकर पुरानी सुखद स्मृतियाँ जाग उठती हैं और रोगी के मानसिक-जीवन की टूटी हुई शृङ्खला जुड़ने लगती है। इससे काफी लाभ पहुँचाता है।

व्यवसाय—बेकार व्यक्ति का दिमाग "शैतान की आंत" होता है। यदि उसे व्यस्त रक्खा जाय तो उसका मानसिक दृष्टिकोण भी बदल जाता है और उसे लाभ भी पहुंचता है। उपयोगी कार्य करने से रोगी में आत्म सन्तोष की भावना जाग उठती है।

बूढ़े लोगों का मार्ग निर्देशन

बूढ़े होने पर व्यक्ति के जीपन में कुछऐसे परिवर्तन आते हैं, जिनसे

वह अभियोजन स्थापित नहीं कर पाता। शारीरिक शक्ति के कम होने के साथ-साथ उसका सामाजिक एवं आर्थिक महत्त्व भी कम हो जाता है। वह अपने व्यवसाय से अवकाश ग्रहण कर लेता है। ऐसी दशा में दूसरों का ध्यान आकर्षित करने के लिए वह—किशोरावस्था के बालक के समान व्यवहार करने लगता है। बूढ़े होने में भी एक शान है। वृद्ध व्यक्ति को अपनी रुचि के अनुसार 'हाबी' चुन लेना चाहिए। हाबी ऐसी हो जो लाभदायक और अन्य सन्तोष प्रदान करने वाली हो। यदि वह चाहे तो परिपक्व अनुभव से समाज को बहुत लाभ पहुँचा सकता है। ये सारी बातें एक कुशल निर्देशक के सामने रखना चाहिए।

तर्क एवं विवेक—मानसिक रोग के कारणों पर तार्किक दृष्टि डालने से भी लाभ होता है। परन्तु सबके पास तार्किक विवेक नहीं होता। अतः अन्य विधियों का सहारा लेना आवश्यक है। रोगी को तर्क द्वारा यह समझना चाहिए कि सम्भव और असम्भव क्या है? मानसिक रोग-ग्रस्त व्यक्ति प्रायः अव्यावहारिकऔर वास्तविकता से दूर होता है। वह बहुत सी असम्भव इच्छाओं को अपना कर दुःखी रहता है तर्क द्वारा जब वह अपनी सीमाओं को भली भाँति समझ जाता है, तो मानसिक अशान्ति एवं द्वन्द्व दूर हो जाते हैं। जीवन के प्रति विवेक शील (Rational) दृष्टिकोण रखने से मानसिक स्वास्थ्यबना रहता है।

अध्याय
: ५ :
बालक का अभियोजन
Facilitating the Child's adjustment

मनोविज्ञान के विद्यार्थी के लिए बालक के व्यवहारों का अध्ययन अति आवश्यक है। व्यक्ति के भावी व्यवहारों का बीजारोपण बाल्य-काल में हो जाता है। बहुत से बालक अपनी परिस्थिति से अच्छी प्रकार अभियोजन नहीं स्थापित कर पाते। बालक को अभियोजन स्थापित करने में वही व्यक्ति सहायता प्रदान कर सकते हैं, जो स्वयं अपनी परिस्थितियों से भली भाँति अभियोजन स्थापित करते रहे हों। जिस प्रौढ़ व्यक्ति का अपने सामाजिक परिधि में उचित स्थान है और वह प्रेम, वैवाहिक जीवन तथा अपने व्यवसाय में अच्छी प्रकार से अभियोजन स्थापित कर पाया है, वही बालक की समस्याओं को धैर्य पूर्वक समझेगा और उसके सुलझाने का उपाय बतलाएगा। बहुत से विद्यार्थियों का पालन-पोषण ऐसी माताओं द्वारा होता है, जो स्वयं असुरक्षा एवं संवेगीय अस्थिरता से पीड़ित रहती हैं। वे अपने बालकों को तमाम वास्तविकता एवं काल्पनिक भय से बचाती रहती हैं। डर के मारे वे अपने बच्चों को जी भर कर खेलने नहीं देतीं। सर्दी, गर्मी और वर्षा से इस प्रकार बचाती हैं कि बालक वातावरण से अभियोजन स्थापित करने की क्षमता नहीं उत्पन्न कर पाता है।

निरीक्षण द्वारा यह भी पता चला है कि माता-पिता प्रायः अपने

बालकों के सम्बन्ध में गलत अनुमान लगाते हैं। या तो वह समझते हैं कि उनका बालक अपनी परिस्थितिय से अभियोजन रखता है या तो वह विल्कुल ही कुअभियोजन (maladjustment) रखता है। इसका कारण यह है कि वे बालकों के व्यवहार को समझने की क्षमता नहीं रखते। मनोवैज्ञानिक तथ्यों की जानकारी रखने वाले माता-पिता, मनोविज्ञान से अनभिज्ञ माता-पिता से, अच्छे होते हैं। अधिकांश माता-पिता बालक के पालन पोषण करने के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं रहते। बालक के पालन पोषण में यदि वे आनन्द और उत्तरदायित्व का अनुभव नहीं करते तो वास्तव में ऐसे वैवाहिक युगल माता-पिता होने के योग्य होते ही नहीं। उन्हें बालक के पालनपोषण में प्रशिक्षित करना चाहिए। ऐसे माता-पिता अपने ही समस्याओं में इतने लीन रहते हैं कि उनका बालक अपने को तिरस्कृत और अनावश्यक समझता है। इसी भाव के आ जाने पर लड़के के व्यवहार में विभिन्न प्रकार की उलझनें आ जाती हैं। यदि माता-पिता दूरदर्शिता से काम लें तो बालक की बहुत सी उलझनें उत्पन्न न होने पावें। विकासोन्मुख बालक के जीवन में अनेक परिस्थितियाँ महत्त्वपूर्ण होती हैं, जिनमें कुछ निम्नलिखित हैं :—

(१) बालक को यह विश्वस होना चाहिए कि उसे उसके माता-पिता चाहते है। बालक से परिवार वालों का सम्बन्ध इतना महत्त्वपूर्ण है कि वही उसके अभियोन के ढंग को निर्धारित करता है।

(२) जिस परिवार में माता-पिता स्वयं आपस में लड़ते झगड़ते रहते हैं, उन घरों के बालक असुरक्षा और तिरस्कृत व्यवहार को सहन करते हैं,। यदि माता-पिता का व्यवहार एक दूसरे के प्रति विश्वास, दया एवं पारस्परिक सम्मान पर आधारित होगा तो बालक अपने को सुरक्षित समझता है। टूटे घरों (BroKen Homes) के बालकों का विकास सन्तुलित नहीं होता। बालक माता-पिता के प्रति भक्ति रखता है। जब वे आपस में लड़ने लगते हैं तो उसकी भक्ति भावना विभाजित

हो जाती है। वह निश्चित नहीं कर पाता किसका साथ दे और किससे दूर रहे। ऐसी अवस्था में उसमें भावनात्मक अस्थिरता और असुरक्षा के भाव आ जाते हैं।

(३) वे माँ-बाप जो अपने बालक के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार रखते हैं अथवा उसको तुच्छ समझते हैं; वे वास्तव में उसके अभियोजन में विघ्न डालते हैं। माता-पिता के द्वारा उचित प्यार और ध्यान न पाकर बालक या तो आक्रामक व्यवहारी हो जाता है या निषेधात्मक पर्याय (Substitute) वाले कार्य करता है। जिस परिवार में माता-पिता के सम्बन्ध अच्छे होते हैं और वे बालक पर उचित ध्यान देते हैं, उनके बालक स्वयं को सुरक्षित एवं प्रोत्साहित पाते हैं। बालक को साधारण पारिवारिक कार्यों के निर्णय का अवसर देने से उसमें आत्म विश्वास और प्रियता की भावना पाई जाती है।

(४) प्रौढ़-व्यक्ति में जो संवेगात्मक अस्थिरता पाई जाती है, बहुधा उनके कारण बचपन की घटनाओं में निहित होते हैं। यदि प्रारम्भ से ही बालक के संवेगीय विकास पर उचित ध्यान दिया जाय तो प्रौढ़ होने पर भी वह सन्तुलित रहेगा। इस बात का सर्वथा ध्यान रखना चाहिए कि बालक बचपन में तीव्र द्वन्द्व या विरोधी परिस्थितियों में न फँसें।

(५) यदि परिवार के सदस्यों की साप्ताहिक बैठक बुलाई जाय जिनमें परिवार की सामूहिक एवं वैयक्तिक समस्याओं पर विचार किया जाय, तो अभियोजन स्थापित करने में सुविधा होगी। बालक अपने अभिभावकों के सुझाव के अतिरिक्त पुस्तकालय अथवा व्यक्तिगत अनुभवों से अभियोजन कला सीखता है। ऐसी पारिवारिक बैठकें उसको सहायता प्रदान करने में समर्थ होंगी।

पूर्व कथित परिस्थितियों में बालक का विकास असन्तुलित होता

है। हेविट महोदय (S.E. Hewett) ने लगभग पाँच सौ बच्चों का निरीक्षण करने के बाद असन्तुलित बालकों के तीन प्रकार बतलाए हैं—

(अ) अति प्रतिबद्ध बालक (Over Inhibited Child)—जिस वातावरण में बालक पर अत्यधिक प्रतिबन्ध लगाया जाता है, उसकी स्वच्छन्दता को नष्ट किया जाता है, खेलने कूदने की स्वतंत्रता नहीं दी जाती है, उसका व्यक्तित्व विघटित हो जाता है। उपेक्षित और असमाजिक पारिवारिक वातावरण में पला हुआ बालक असन्तुलित होगा। जिस माता का परिवार में तिरस्कार किया जाता है, वह अपने बच्चों पर अधिक प्रतिबन्ध लगाती है। इस कार्य से उसे अपनी महत्ता का आभास होता है। कुछ पिता कठोर नैतिक सिद्धान्तवादी होते हैं और छोटी-छोटी भूलों को भी सहन नहीं कर पाते। ऐसे पिता अत्यधिक प्रतिबन्ध लगाते हैं। कठोर नैतिकतावादी माता-पिता के बालक, उचित व्यवहार करने पर ही उनका प्रेम और विश्वास प्राप्त कर पाते हैं। उन बालकों में भूल करने पर माता पिता द्वारा उपेक्षित होने का भय घर कर जाता है। अतः प्यार प्राप्त करने के लिए बालक अपनी मूल प्रवृत्तियों को दबा कर अनुशासन स्वीकार करता है। अनुशासन और मूल-प्रवृत्तियों में विरोध होने के कारण उसके अन्दर आन्तरिक द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है। परिणाम स्वरूप बालक-स्नायु विकृत हो जाता है। ऐसे बालक लज्जाशील, एकान्त-प्रिय तथा भयभीत स्वभाव के हो जाते हैं। उनमें अंग फड़कने, नाखून काटने, सोने में डरने तथा सर्वदा भयभीत रहने आदि अवगुणों का समावेश हो जाता है। विशेष बात यह है कि अति प्रतिबद्ध व्यक्ति में अन्तर्द्वन्द्व अवश्य पाया जाता है।

असामाजिक आक्रामक बालक—जन्म से ही माता पिता के अस्वीकरण के कारण बालक के अन्दर आक्रमणकारी व्यवहार की वृत्ति उत्पन्न हो जाती है। वह समझता है कि उसके साथ धोखा

किया गया है। अतः अपनी वैमनस्यता और कटुता के भाव आक्रमणकारी व्यवहारों में प्रकट करता है। ऐसे वातावरण के कारण उस में परता एवं दूसरों के प्रति उपेक्षा की प्रवृति उत्पन्न हो जाती है। उसके अन्दर प्रेम और स्वीकृति के अभाव के कारण उसका अन्तःकरण जाग्रत नहीं हो पाता। ऐसा बालक असामाजिक और आक्रणकारी व्यवहारों के कारण दूसरों से उलझा करता है तथा बड़ों का शासन स्वीकार नहीं करता।

(स) सामाजिक उलझे बालक (Socialized Detinguent Child) इस प्रकार का बालक किसी टोली का वफादार सदस्य होता है। वह अपने सदस्यों के प्रति पूर्ण सहानुभूति रखता है। अवसर पड़ने पर प्राणों की बाजी लगा देता हैं। एक छोटी-सी टोली के सम्बन्ध से उसका व्यवहार सामाजिक होता है। परन्तु बड़े समुदाय के सम्बन्ध में वह कु-अभियोजित रहता है। ऐसे बालकों का पिता की अपेक्षा माता से अधिक अच्छा सम्बन्ध रहता है। माता-पिता से उचित सम्बन्ध न होने के कारण अथवा पास पड़ोस के दूषित वातावरण के कारण बालक अपराधी टोलियों का सदस्य हो जाता है।

समाज बालक के समक्ष कुछ ऐसी मान्यतायें रखता है जिसका उलंघन अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता। यदि बालक अपने व्यवहार द्वारा इन मान्यताओं को अस्वीकार करता है तो समाज द्वारा अस्वीकृत किए जाने पर, विघटित व्यक्तित्व का बीजारोपण करता है। व्यांवहारिक का स्वरूप निर्धारित करने वाली कुछ संस्थाओं का नाम इस प्रकार है—परिवार, पड़ोस, संघ, धार्मिक संस्थायें विद्यालय, रीति-रिवाज, कानून उद्योग इत्यादि। इन संस्थाओं द्वारा निर्धारित व्यवहार के ढंगों से यदि बालक अभियोजन नहीं स्थापित कर पांता तो दो प्रकार की प्रतिक्रियायें करता है—या तो उनसे पलायन करता है या उसका विरोध करता है

(१) पलाय करने वाले इस प्रकार व्यवहार करते हैं —

(अ) भीरुता (आ) दिवास्वप्न (इ) लज्जाशीलता (ई) पराङ्मुखापेक्षिता (उ) कायरता (ऊ) असामाजिकता (ए) एकान्तप्रियता (ऐ) अनुत्तरदायित्व (ओ) संशयता आदि ।

पूर्व कथित व्यवहार ऐसे हैं जिनके द्वारा व्यक्ति अपनी परिस्थितियों से पलायन करता है । परन्तु इन परिस्थितियों से उचित अभियोजन स्थापित न करने के कारण उसके अन्दर स्नायु-विकृति, आर्थिक निर्भरता, मद्यपान आदि कुवृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं । यहाँ तक कि वह आत्महत्या तक कर बैठता है । कठिन परिस्थितियों से पलायन करने की प्रवृत्ति के साथ ही साथ कुछ व्यक्ति उन परिस्थितियों की कठोरता को कम करने का प्रयत्न भी करते हैं । ऐसे व्यक्ति वैज्ञानिक आविष्कार, साहित्यरचना एवं कला कौशल की वृद्धि भी करते हैं ।

परिस्थितियों से अभियोजन स्थापित न कर पाने पर व्यक्ति आक्रामक प्रवृत्ति का हो जाता है । उसके व्यवहार में ये परिवर्तन पाये जाते हैं :—

(१) आज्ञोलंघनता (२) आक्रमणकारिता (३) शासन का विरोध (४) क्रोध एवं झगड़ालू प्रवृत्ति (५) दैनिक कार्यों की अस्वीकृति (६) मनमानी विधि अपनाना (७) निर्देशन करना (८) परम्परा तोड़ना (६) बाल अपराध (१०)अहंकार । इन व्यवहारों के अतिरिक्त उसके अन्दर मनोविकृत काम करने से इन्कार करने और अपराध करने की प्रवृत्ति पाई जाती है । परिस्थितियों पर आक्रमण करने के कुछ उपयोगी तरीके भी हैं—स्पर्धा पूर्ण खेल, स्थान और वस्तुओं की खोज औद्योगिक उन्नति, सामाजिक सुधार एवं राजनैतिक कार्यों में भाग लेना आदि ।

अब हम बालक के व्यवहार सम्बन्धी कुछ मुख्य उलझनों पर प्रकाश डालेंगे । वे उलझनें, जिनके सम्बन्ध में माता-पिता प्रायः मनोवैज्ञानिक सलाह जानना चाहते हैं ये हैं :—

अपने ही भाई-बहनों से ईर्ष्या, असामान्य व्यवहार (अंगूठा-चूसना,

नाखून काटना अंग चमकाना, अनुशासन आदि।

(१) भाई-बहनों से ईर्ष्या—जबतक परिवार में एक ही बालक रहता है, तब तक वही माता-पिता का आकर्षण बिन्दु रहता है। परन्तु दूसरे बालक के जन्म के बाद नवजात शिशु पर माता-पिता अधिक ध्यान देने लगते हैं और पहले को उपेक्षित कर देते हैं। अपने को पाकर उपेक्षित बालक या तो आक्रामक हो जाता है अथवा मनोविकार उत्पन्न कर लेता है। उस नये बालक से उसे ईर्ष्या होती है। वह चाहता है कि नवजात शिशु को हटा दिया जाय। ईर्ष्यावश वह निम्नप्रकार के व्यवहार करता है :—

(अ) नवजात शिशु को मारना पीटना, चिकोटना आदि (ब) नवजात शिशु की उपस्थिति पर ध्यान न देना तथा (स) किसी भाई या बहन के होने के तथ्य को भी अस्वीकार कर देना। इर्ष्या की भावना स्वाभाविक है। दूसरे बालक के जन्म लेते ही बालक में यह भाव उत्पन्न होता है कि उसे लोग अब नहीं चाहते। या तो वह एकान्तप्रिय हो जाता है, यदि वह इस स्थिति से उपयोगी अभियोजन स्थापित करता है तो किसी अन्य उपयोगी कार्य में लग जाता है, जैसे पढ़ना, चित्र बनाना आदि। दूसरे बालक के आ जाने पर सर्वोत्तम अभियोजन यह होता है कि बालक उसके पालन पोशण में सहायता करे। उससे सहानुभूति रक्खे।

बालक में ईर्ष्या उत्पन्न करने की जिम्मेदारी माता-पिता के अनुचित व्यवहार के ऊपर होती है। गर्भवती माता से वह पूछता है कि उसके पेट में क्या है ? यह जानकर कि उसके पेट में कोई दूसरा बालक है, उसे बड़ी निराशा होती है। अवसर पाकर वह माता के पेट पर चपत भी मारता है। इसी समय से नवागन्तुक के प्रति बच्चे की धारणा परिवर्तित करते रहना चाहिए। उसको यह विश्वास दिलाना चाहिए कि नए बच्चे के जन्म के बाद उसका महत्व कम नहीं होगा। माता जब बच्चे को लेकर दूध पिलाती है तो उसे देखकर पहले बालक के मन में सर्वाधिक ईर्ष्या उत्पन्न

हो जाती है। यदि वह भी दूध पीने को ठह करे या दूध की शीशी माँगे तो दे देना चाहिये। एक दो बार पी लेने के बाद वह यह समझ लेगा कि इसमें कोई नवीनता नहीं है। अतः वह हठ करना भी छोड़ देगा। माता-पिता को पहले बालक के सामने नवजात शिशु से अधिक प्यार नहीं जताना चाहिये। हो सके तो ऐसा व्यवहार प्रदर्शित करना चाहिए कि जैसे उसके प्रति वे विशेष अनुराग नहीं रखते। पिता को बाहर से आने के बाद कुछ देर तक पहले बच्चे से, दो बातें प्यार की करनी चाहिये। आते ही इस प्रकार का प्रश्न नहीं करना चाहिए "मुन्ना! छोटा भाई कहा है?" बालक पर ऐसे प्रश्नों का उल्टा प्रभाव पड़ेगा; वह समझेगा कि पिता की दृष्टि में उसकी अपेक्षा नवजात शिशु का महत्व अधिक है।

कुछ माता-पिता अपने बड़े बालक को इस प्रकार सिखाते हैं कि वह छोटे बालक के पालन-पोषण में सहर्ष सहायता देता है। जैसे वह दूध की बोतल लाता है, तौलिया उठाता है, और सहर्ष खेलाता है। जब बालक को यह विश्वाश हो जाता है कि उसे, उसके माता पिता चाहते हैं तथा प्यार करते हैं और नये बालक से उसके महत्व में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई तो इर्ष्या का स्थान सहानिभूति और संग ले लेते हैं। बालकों में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। बड़ा बालक छोटे की रक्षा करता है और अपने खिलौने के साथ उसे खेलाता है। इन सारी बातों को ध्यान में रखते हुए माता-पिता को नये बालक के आने पर पुराने बालक के अभि-योजना में सहायता देनी चाहिये।

(२) आसमान्य व्यवहार—माता-पिता के पालन-पोपण के अनुचित ढंग के कारण बालक के अन्दर कुछ असमान्य व्यवहार उत्पन्न हो जाते हैं। इनके कुछ मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं—

(अ) अंगूठा चूसना—माता के स्तन से पर्याप्त दूध न चूस पाने के कारण ही बालक अंगूठा चूसता है। जो बालक दूध की बोतल अति-

शीघ्र समाप्त कर देते हैं. उनमें अगूठा चूसने की अधिक आदत पाई जाती है। जो बालक दूध की बोतल को देर में समाप्त करते हैं उनमें यह आदत बहुत कम पाई जाती है। जिन बालकों को चूसने के लिये दूध पर्याप्त मात्रा में मिलता है, वे अंगूठा नहीं चूसते हैं। जो मातायें सात ही महीने दूध पिलाने के बाद अपने बालक को अलग कर देती हैं, उनके बालक अधिक अँगूठा चूसते हैं।

यदि एक वर्ष का हो जाने पर भी, बालक अंगूठा चूसने की आदत न छोड़े, तो, समझना चाहिए कि थकावट और नीरसता से आराम पाने के लिए वह अंगूठा चूसता है। ऐसा बालक खेलने के लिऐ विस्तृत मैदान और साथी मिल जाने पर यह आदत छोड़ देता है कुछ और बड़े होने पर जैसे जैसे उसे संसार का अनुभव होता जाता है, वह इस आदत को छोड़ देता है। यदि बालक ऐसा न करे तो इसको उसके प्राकृतिक विकास पर छोड़ देना चाहिए, बड़े होने पर स्वयं यह आदत छूट जायगी।

(ब) नाखून काटना—प्राय: देखने में आता है कि बालक दो तीन वर्ष के वाद नाखून काटता है। विद्वानों का मत है कि बालक जब किसी संवेगात्मक तनाव का अनुभव करता है, तो, उससे छुटकारा पाने के लिए वह नाखून काटता है। कुछ लोगों का कहना यह है कि बालक दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कराने के लिए ऐसा करता है। बालक को ऐसा करते देख दूसरों ध्यान उसकी ओर आकृष्ट होता है, उस पर डाँट फटकार भी पड़ती है। फलस्वरूप उसमें हीनता की भावना आ जाती है।

(स) अंग फड़कना—विचित्र ढंग से आँख चमकना, नाक सिकोड़ना, हाथ हिलाना, मुँह सिकोड़ना आदि आदतें बच्चों में इसलिए आ जाती हैं, कि इन क्रियाओं के द्वारा वह दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है। कुछ दिनों बाद यह व्यवहार उसकी आदत

बन जाती है फिर छूटने में कठिनाई होती है।

(द) चोरी करना—बालक की चोरी को भयानक नैतिक-अपराध नहीं समझना चाहिए। यदि उसकी इच्छा सन्तुष्ट नहीं होती तो वह किसी वस्तु को उठा लेता है, परन्तु वह यह नहीं समझता है कि वह चोरी कर रहा है। दूसरों को चमका देने के लिए और उत्सुकता को सन्तुष्ट करने के लिए भी वह चोरी कर लेता है। परन्तु कुछ बालकों में अनावश्यक वस्तुओं को चुरा लेने की आदत हो जाती है। टोली में रहकर बालक चने उखाड़ना, फलों पर ढेले फेंकना और ईख तोड़ने का कार्य करता है। प्रायः बच्चों के चोरी करने के पीछे आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारण भी होते हैं।

(य) झूठ बोलना—बालक के झूठ बोलने के कई कारण होते है। जिन बालकों की बुद्धि और कल्पना शक्ति तीव्र होती है वे तरह-तरह की मनगदन्त बातें करते हैं। दूसरों को चकमा देने के लिए भी बालक झूठ बोलते हैं। दंड से बचने के लिए भी वह झूठ का सहारा लेता है। कभी-कभी अपने को श्रेष्ठ प्रमाणित करने के लिए भी वह झूठा बयान देता है। यही छोटी बातें उसे झूठ बोलने का आदी बना देती हैं।

पूर्वोक्त सभी असामान्य व्यवहारों को सुलझाने के लिए सहानुभूति पूर्ण दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। बालक को डाटना डपटना नहीं चाहिए। उसकी अलोचना भी नहीं करनी चाहिए। ऐसा करने से उसमें हीनता की भावना घर कर जाती है। असामान्य व्यवहारों को समझकर उन्हें मनोवैज्ञानिक रीति से दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

(३) अनुशासन—जिन बालकों का पालन-पोषण उचित रीति से नहीं होता, उनके परिवार में कलह रहता है, या माता-पिता बच्चों में रुचि नहीं लेते तो बालकों में अनुशासन हीनता आ जाती है। साधारणतः

अनुशासन का अर्थ दण्ड देने से दिया जाता है, परन्तु वास्तव में अनुशासन का अर्थ है, प्रशिक्षण। बालक को अनुशासन के लिए सजा नहीं देनी चाहिए, बल्कि उसे प्रशिक्षित करना चाहिए। जो माता-पिता कठोर व्यवहार करते हैं, उनके बालक अनुशासन स्वीकार तो कर लेते हैं, परन्तु भयभीत रहते हैं। जैसा कि हमने बालकों में द्वेष की भावना पर प्रकाश डाला है, उससे पता चलता है कि असुरक्षा, संवेगीय अस्थिरता और माता-पिता का तिरस्कार बच्चों के अनुशासनहीन होने के कारण बन जाते हैं।

बालक यंत्र के समान नहीं सीखता। वह एक आदत छोड़ता है, तब दूसरी आदत सीखता है। यदि वह अपनी आयु और बुद्धि के बालकों के समान व्यवहार नहीं करता तो उसका कोई न कोई कारण अवश्य होता है। माता-पिता को ऐसे व्यवहारों के कारण का पता लगा कर बालक की शक्तियों को उचित मार्ग की ओर मोड़ना चाहिये। अनुशासनहीनता के कार्य पर बालक से यह कभी नहीं कहना चाहिए कि "मैं तुमको पसन्द नहीं करता" बल्कि यह कहना चाहिए "यह कार्य अनुचित है परन्तु मैं तुमको प्यार करता हूं।" बच्चों को अनुशासन सिखलाते समय अपमानित नहीं करना चाहिए। उसमें यह विश्वास जमाना चाहिए कि अनुशासन उचित है और उसे अभी तक प्यार किया जाता है।

बालकों का पालन-पोषण एक श्रेष्ठ मानवीय कला है। केवल कुछ व्यक्ति ही इस कला में सिद्धहस्त होते हैं। आधुनिक ज्ञान ने इस कला के सम्बन्ध में कुछ ऐसे नवीन तथ्य उपस्थित किए हैं, जिनकी जानकारी प्रत्येक माता-पिता के लिए आवश्यक है। नीचे हम कुछ ऐसे नियम प्रस्तुत करते हैं :—

(१) बालक को दूध चूसने का पर्याप्त अवसर मिलना चाहिए। माता को दूध पिलाते समय बालक से प्यार का व्यवहार करना चाहिए।

(२) बालक को मलमूत्र का त्याग कराने में सावधानी बरतनी चाहिए। बालक, जबतक शारीरिक एवं संवेगीय रूप से सीखने के योग्य नहीं हो जाता, तब तक उसका सामाजीकरण नहीं किया जा सकता।

(३) बालक का पालन पोषण दीर्घकाल तक केवल एक व्यक्ति को ही करना चाहिए ताकि बालक उससे घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर ले।

(४) वे माता-पिता, जिनके पारस्परिक सम्बन्ध पूर्णरूपेण अभियोजित होते हैं, बालक के विकास पर अच्छा प्रभाव डालते हैं।

(५) साधारणतया बालक माता-पिता के अनुकरण और सामाजिक दवाव से सीखता है। उस पर कठोर अनुशासन नहीं लादना चाहिए। यहाँ तक कि उसके यौन-भटकाव को भी सहानुभूति पूर्ण दृष्टि से देखना चाहिए।

(६) परिवार में बालक के पूर्ण अस्तित्व को पूर्ण महत्त्व देते हुए, उसकी आवश्यकताओं और भावनाओं पर ध्यान देना चाहिए। बालक से व्यवहार करने में माता-पिता को सच्चाई, ईमानदारी, निष्कपटता का पालन करना चाहिए।

हमारे देश में तो नहीं, परन्तु कुछ देशों में बालकों का-पालन-पोषण तथा उनकी शिक्षा-दीक्षा मनोवैज्ञानिक ढंग से की जाती है। वहाँ के बालकों का व्यक्तित्व भी सुदृढ़ नहीं होने पाता। इसका कारण यह है कि मनोवैज्ञानिक नियमों के अनुसार चलने से उनके साथ आवश्यकता से अधिक सावधानी बरती जाती है। अतः बालक को मोम का पुतला समझा जाता है। उसे हर आघात से बचाया जाता है। परिणामस्वरूप वह एक छिछले व्यक्तित्व का विकास करता है। इसमें मनोवैज्ञानिक विधियों का कोई दोष नहीं, है, बस मनोवैज्ञानिक विधियों का उचित व्यावहारिक प्रयोग नहीं हो पाता। हमें, बालक को, छुई मुई नहीं समझना

चाहिए। केवल इतना ध्यान रखना चाहिए कि उसको कोई मनोवैज्ञानिक आघात न पहुँचे, परन्तु उसके व्यवहार और अनुभूतियों में किसी प्रकार की बाधा नहीं डालनी चाहिए।

बाल—अपराध

(Juvenile Delinquency)

बालक के विकास को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक-पारिवारिक इत्यादि अनेक परिस्थितियाँ प्रभावित करती हैं। इन सबके जटिल प्रभाव के कारण उसका चरित्र निर्मित होता है। हम यह मानते हैं कि बालक स्वयं अपराधी नहीं होता, न तो उसमें अपराधी प्रवृत्तियाँ ही पाई जाती हैं। बालक में अपराध कुछ उन विधायक कारणों से उत्पन्न होते हैं, जो वातावरण और संस्कृति में निहित रहते हैं। हमारा मत है कि समाज निम्न तीन बातों को मानकर चलता है :—

(१) सांस्कृतिक तत्वों का व्यक्ति पर प्रभाव पड़ता है।

(२)प्रत्येक समाज अपने सदस्यों के व्यवहारों का नैतिक मापदण्ड निर्धारित करता है और उस स्तर से भटकने पर व्यक्ति का समाज के द्वारा सेंसर होता है।

(३) प्रत्येक व्यक्ति स्वच्छन्द होता है। अच्छे बुरे मार्ग को अपनाने का उत्तरदायित्व उसी पर होता है।

इन तीन बातों के आधार पर हम प्रौढ़ और बालक, दोनों के व्यवहारों की व्याख्या करते हैं। प्रत्येक समाज कुछ ऐसे नियम और रीति-रिवाज निर्धारित करता है जिसका मानना प्रत्येक सदस्य के लिए आवश्यक होता है। जो इन्हें नहीं मानते वे अपराधी होते हैं। प्रौढ़ व्यक्ति जब उन नियमों को तोड़ता है तो उसे अपराध कहते हैं। जब बालक उसे तोड़ता है तो उसे बाल अपराध कहते हैं। बाल-अपराध और अपराध में केवल दृष्टिकोण का अन्तर होता है। बाल-अपराध को आयु, दण्डव्यवस्था और निर्णय -

विधि भिन्न होती है। मूलतः इस बात पर जोर दिया जाता है कि बालक सुधर कर समाजोपयोगी बन जाय। प्रत्येक देश में बाल अपराध की आयु सीमा भिन्न-भिन्न है। भारतवर्ष में १५ वर्ष तक बालकों के अपराध बाल-अपराध कहलाते हैं। कुछदेशों में यह सीमा २१-२२ वर्ष तक भी है।

प्रत्येक युग और समाज का सांस्कृतिक स्तर एक सा नहीं होता। विभिन्न समाज के सामाजिक एवं नैतिक मूल्य भिन्न-भिन्न होते हैं। जिस कार्य को एक समाज में अपराध माना जाता है, दूसरे समाज में उसे अपराध नहीं माना जाता। ध्रुवीय क्षेत्र में कुछ ऐसी जातियाँ पाई जाती हैं जो अपने परिवार के वृद्ध सदस्य को मार कर खा जाती हैं। उनके लिए यह अपराध नहीं है। कुछ जंगली जातियों में नर-बलि मान्य है। परन्तु प्रत्येक सभ्य समाज में मानवता, दया,धर्म, भ्रातृ भावना, बड़ों के प्रति आदर की भावना तथा दूसरों के प्राण और सम्पत्ति के प्रति आदर की भावना रखना आदि सामान्य मान्यतायें हैं। इनकी रक्षा के लिए नियम बनाए जाते हैं। बालक इन नियमों का उलंघन किस प्रकार करते हैं, उसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(अ) एक ऐसा बालक जो देखने में बड़ा भोला-भाला लगता है, उसे देखकर किसी को भी सन्देह नहीं होता कि यह कोई अनियमित या असामाजिक कार्य करता होगा। परन्तु ऐसा देखा जाता है कि ऐसे बालक अनियमित रूप से व्यापार करने वाले दलों के सम्पर्क में आ जाते हैं। इनके द्वारा शराब, अफीम, कोकीन एवं सोना आदि का तस्कर व्यापार होता है। पुलिस को उनकी भोली भाली शकल पर सन्देह तक नहीं होता। भीड़ भाड़ में मौका पाकर जेब काट लेने वाले बालक तो लगभग प्रायः सार्व-जनिक स्थानों पर पाये जाते हैं।

(आ) एक पन्द्रह वर्षीय बालक लगभग अपनी ही आयु की लड़की से प्रेम सम्बन्ध रखता है। ईर्ष्या द्वेष अथवा झगड़े के कारण उत्तेजित होकर वह अपनी प्रेयसी की हत्या कर देता है।

(इ) ऐसे वालक प्रायः देखने को मिलते हैं, जो कक्षा छोड़ भग जाते हैं, पढ़ाई लिखाई से जी चुराते हैं , घर का रुपया चुराते हैं, झूठ बोलते हैं, डींग हाँकते हैं मार पीट करते हैं, धूम्रपान करते और गन्दी पुस्तकें पढ़ते हैं, अश्लील चित्र देखते हैं, और समलिंगीय यौन सम्बन्ध रखते हैं तथा बड़ों की खिल्ली उड़ाते हैं ।

उपरोक्त कुछ ऐसे उदाहरण हैं, जिससे वाल अपराध का स्वरूप समझा जा सकता है । यों इसकी सीमा नहीं निर्धारित की जा सकती । वाल अपराध के कुछ सामान्य कारण हैं जिन्हें क्रमशः शारीरिक मानसिक, सामाजिक, आर्थिक तथा भौतिक अंगों में विभाजित कर सकते हैं ।

शारीरिक कारण—ऐसा नहीं समझना चाहिए कि शारीरिक दोष वालक को अपराध करने को विवश करते है। शारीरिक दोष स्वयं अपराध के कारण नहीं होते- वल्कि इन दोषों के प्रति दूसरे लोगों का जो दृष्टि कोण एवं व्यवहार होते हैं, वही वालक को अपराधी बनाते हैं । बहुत से वालकों में जन्मजात शारीरिक दोष पाये जाते हैं । लँगड़े, अन्धे, काने, डेवरे, बहरे, गूँगे, हकलाने वाले, कुवड़े, गंजे, नक-चिपटे इत्यादि ऐसे शारीरिक दोष युक्त बच्चों के प्रति उनके साथी और पास पड़ोस वाले जैसा व्यवहार करते हैं, वह किसी से छिपा नहीं है । उदाहरण के लिए 'क' एक ऐसा बालक है जो कुछ लँगड़ा कर चलता है, उसका शरीर भी दुर्वल है । बह खेल-कूद में फुर्तीला नहीं रहता, भचक के चलता है । उसकी उम्र के लड़के उसे चिढ़ाते हैं । उसका नाम लगँड़ा या तैमूरलंग इत्यादि रख देते हैं चूँकि वह खेलने में फुर्तीला नहीं है, इसलिये कोई भी टोली उसे अपना सदस्य नहीं बनाना चाहती । वालक ही नहीं बड़े व्यक्ति भी उसे ऐबी समझकर उसका तिरस्कार करते हैं । प्रारम्भ में वालक का व्यवहार प्रशंसा और अस्वीकरण से प्रभावित होता है । शारीरिक दोष वाले बालकों को सामान्यतः अस्वीकरण का अनुभव प्राप्त होता है ।

समाज में उसे यथोचित सम्मानित स्थान नहीं प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति में दूसरों का ध्यान आकर्षित करने के लिए तथा अपनी महत्ता को स्थापित करने के लिए, वह अपराध की ओर अग्रसर होता है। चोरी करना, झूठ बोलना, धोखा देना, झगड़ा करना पढ़ने से जी चुराना आदि साधारण कार्य हैं। अतः हमने देखा कि 'क' को अपराधी बनाने में शारीरिक दोष का नहीं बल्कि दूसरों के दृष्टिकोण का हाथ है। यदि शरीरिक दोष वाले बालकों के प्रति हमारा सहानुभूतिपूर्ण हो तो उन्हें बाल अपराध से बचाया जा सकता है। शारीरिक दोष युक्त बालिकाओं की अपराधी होने की सम्भावना बालकों की अपेक्षा कम रहती है।

कुछ विद्वानों का मत है कि बाल अपराध जीवाँणु द्वारा वंशगत भी होता है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनके जीवाणु दरिद्र और निर्बल होते हैं, उनकी सन्तान सामाजिक बनने में असमर्थ रहते हैं। अतः वे असामाजिक कार्यों की ओर उन्मुक्त रहती है। बाल-अपराध पर शरीर-रसायन और अन्त:स्रावी ग्रन्थियाँ (Body Chemistry aud endocrine glands) और नाड़ी मण्डल की क्रियाओं का भाव मिलता है। ग्रथियों से एक प्रकार का रस (Harmones) निकलकर स्रोत में मिलता रहता है। यदि इस रस की मात्रा उचित नहीं हुई तो उसकी अधिकता या कमी व्यक्ति के व्यवहार पर प्रभाव डालती है और वातावरण से अभियोजन स्थापित करने में बाधा पड़ती है। चुल्लिका ग्रंथि (Thyroid glands) यदि औसत से कम क्रियाशील रहती हैं तो व्यक्ति में थकावट, खिन्नता और मानसिक दुर्बलता आ जाती है। उसका शारीरिक विकास भी रुक जाता है। इस ग्रंथि के अधिक सक्रिय होने पर व्यक्ति चिन्तित, वेचैन और अल्पनिद्रावी हो जाता है। यदि किसी बालक की चुल्लिका ग्रंथि उचित कार्य नहीं करती तो मानसिक दुर्बलता अथवा उत्तेजन के कारण वह असामाजिक कार्य कर सकता है। इसी तरह उपकण्ठ ग्रंथि (Patathyroid Glands) के कम सक्रिय होने पर भी बाकल

उत्तेजित रहता है। पीयूष ग्रंथि (Pitutary glands) के अधिक सक्रिय होने पर व्यक्ति आक्रामक, झगड़ालू एवं अतिकामी हो जाता है। इसके कम सक्रिय होने पर व्यक्ति डरपोक, कायर और बड़बड़ाने वाला आदि हो जाता है। बालक ऐसी मानसिक और शारीरिक स्थिति को लेकर अपराधोन्मुख हो जाता है। मूत्रस्थ ग्रंथि (Adrenal gland) के गड़बड़ी के कारण संगात्मक परिस्थिति में व्यक्ति अभियोजन नहीं स्थापित कर पाता। यौन-ग्रंथियों के अधिक अथवा कम क्रियाशील होने के कारण व्यक्ति में काम सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ उसी मात्रा में पाई जाती है। जिन बालको में कामुकता की प्रधानता होती है, वे सरलता से यौन अपराध में फँस सकते हैं। कुछ शारीरिक दोष वाले बालक बड़े शालीन और मृदुल स्वभाव के होते हैं।

मानसिक कारण—बालक की मानसिक दुर्बलता अपराध करने के लिए प्रेरित नहीं करती बल्कि उसमें सोचने, समझने तथा उचित निर्णय करने की क्षमता न होने के कारण वह अपराध की ओर झुक सकता है। बड़ी सलरता से परिस्थितियाँ, मानसिक रूप से दुर्बल बालकों को अपराध की ओर खींच ले सकती है, जब कि प्रखर बुद्धि का बलाक परिस्थिति को समझ कर उससे कुशल अभियोजन स्थापित कर सकता है। अपराध में पाये जाने वाले आनन्द को ठुकरा सकता है। वह अपने ऊपर नियंत्रण रख सकता है परन्तु मानसिक दुर्बल बालक में सोचने और निर्णय का करने अभाव तो रहता ही है, साथ ही साथ उसमें निर्देशन योग्यता और संसूचन शीलता अधिक पाई जाती है। वह दूसरों के निर्देशन से प्रभावित होकर अपराध करता है। ऐसे बालक अनुचित किस्से कहानियाँ सुनकर या पढ़कर, तथा नाटक देखकर अपराध कर बैठते है। इनमें घटनाओं के समस्त पक्षों पर सन्तुलित रूप में विचार करने की क्षमता नहीं होती, वे बालक जिनमें मानसिक व्याधि पाई जाती है वे अपराध की ओर अधिक सरलता से उन्मुख होते हैं। अपराध भावना से पीड़ित व्यक्ति प्रत्येक अपराध का

कारण स्वयं को समझ लेता है और दण्डव्यामोह से पीड़ित व्यक्ति कल्पित दण्डदाता की हत्या की बात सोचता है। वह जब तक दूसरों को दण्ड नहीं दे लेता उसे चैन नहीं मिलता। दूसरों को दण्डित करने में उसे मानसिक सन्तोष प्राप्त होता है। कभी यह इच्छा इतनी प्रबल हो जाती है कि बालक आग लगाना, झूठ बोलना, षडयंत्र रचना अथवा हत्या कर देने तक का अपराध कर बैठता है। लेकिन मानसिक व्याधि से पीड़ित सभी व्यक्ति अपराधी नहीं होते। कभी परिस्थिति में पड़कर इन्हें असामाजिक कार्य करना पड़ता है।

भावना ग्रंथियो के कारण बालक अनुचित व्यवहार किया करता है। हीनता के भाव को वह अपराधों द्वारा विजय प्राप्त करना चाहता है। मानसिक संघर्ष और संवेगात्मक अस्थिरता के कारण भी बालक अनुचित कार्य करता है। क्रोध, प्रेम, भय और मोह में पड़कर जो उसे नहीं करना चाहिए, वह भी कर डालता है। आत्म-गौरव (Superiority Complex) से पीड़ित व्यक्ति आक्रामक हो जाता है। अतः दूसरों पर अपना प्रभाव जमाने के लिए वह अपराध, मिथ्या भाषण और कृत्रिमता का सहारा लेता है। परन्तु कोई आवश्यक नहीं कि इन भावनाओं से पीड़ित बालक असामाजिक व्यवहार करे। ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, हैं, जिनमें हीनता से पीड़ित बालक सभ्य तथा मृदुल स्वभावी होते हुए भी अपना सारा जीवन किसी सामाजोपयोगी कार्य में लगा देता है। शारीरिक एवं मानसिक दोष व्यक्ति में ऐसी कमजोरी उत्पन्न कर देते है कि वह वातावरण से कुशल अभियोजन स्थापित न करके अपराध की ओर जा सकता है। एक उदाहरण है 'ब' एक ऐसा बालक है, जिसके माता-पिता को गरीबी के कारण बहुत अपमान सहना पड़ा और 'ब' को भी तिरस्कृत होना पड़ा। चेचक के कारण ब' की एक आँख जाती रही और उसके चेहरे पर भद्दे दाग हो गए। अब लोग उसकी हँसी उड़ाने लगे। जहाँ भी वह जाता उसे असहानुभूतिपूर्ण वातावरण प्राप्त होता। 'ब'

इस स्थिति से इतना प्रभावित हुआ कि उसने छोटे-मोटे अपराध करना शुरू कर दिया, जैसे बकरी के बच्चे चुराना, फल काटना, पेड़ों से फल लूटना आदि। वह चोरों के एक गिरोह के चंगुल में फँस गया। कुछ ही दिनों बाद वह उसका सरदार हो गया और सशस्त्र गिरोह बनाकर लूट मार करने लगा। चारो तरफ लोग भय से उसका नाम लेने लगे। इस प्रकार जो महत्त्व उसे साधारण व्यवहार द्वारा न प्राप्त हो सका वह अपराध द्वारा मिल गया। उसे यहाँ तक पहुँचाने का उत्तरदायित्व हीनता की भावना पर है। हीनता की भावना होते हुए भी यदि उसमें योग्यता होती तो असामाजिक कार्य न करके वह समाजोपयोगी कार्य के द्वार किसी राजनैतिक दल या समाज सुधार आन्दोलन का नेता होता। अतः मानसिक दुर्बलता और व्याधि अथवा संवेगीय पुंज के साथ-साथ योग्यता की कमी, ज्ञानभाव और दूषित सामाजिक, आर्थिक-वातावरण बालक को अपराधोन्मुख करते हैं।

सामाजिक एवं आर्थिक कारण—बालक जो कुछ सीखता है, वह अपने वातावरण से सीखता है। सामाजिक एवं आर्थिक वातावरण में वे वे सम्पूर्ण बातें आ जाती हैं, जो व्यक्ति के जीवन की शैली, उद्देश्य और मूल्य निर्धारित करती हैं। संस्कृति का प्रभाव व्यक्ति में उसी प्रकार घुल मिल जाता है जैसे पानी में नमक। निम्नलिखित तीन प्रकार से सामाजिक, आर्थिक वातावरण बालक के चरित्र को प्रभावित करता है :—

(१) **अनुकरण और निर्देशन**—बालक दूसरों को जैसा करता हुआ पाता है अथवा उनसे जो निर्देशन प्राप्त करता है, उसे सीखता है। माता-पिता, शिक्षक, पड़ोसी आदि सीखने के स्रोत होते हैं। जिन जीवन-मूल्यों और व्यवहारों की मान्यताओं को लोग अपनाते हैं, बालक विना प्रयत्न ही उसे अपना लेता है। यदि ये लोग उसे अपराध करना सिखाते हैं या उस पर उचित अनुशासन नहीं रखते हैं तो वह

अपराधी हो जाता है। यदि ये लोग ऐसे जीवन मूल्यों को पसन्द करते हैं जिनकी पूर्ति असामाजिक कारणों से शीघ्र हो सकती है, तो व्यक्ति चोरी-डकैती, चोरबाजारी मिलावट आदि कार्य करने में तनिक भी नहीं हिचकेगा।

(२) निषेधात्मक व्यवहार की प्रेरणा—वातावरण से कुशल अभियोजन स्थापित न कर पाने वाला बालक विघ्न उपस्थित होने पर अपराध की ओर अग्रसर हो सकता है। विघ्न पर विजय पाना, उन्हे स्वीकार करना, या उनसे पलायन करना, इन सभी बातों की प्रेरणा उसे समाज से मिलती है। उचित सामाजिक रीतियों से विघ्नों का मुकावला करके अपराधों द्वारा उनसे निबटने की योग्यता भी उसे सामाजिक वातावरण से प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए एक दृष्टान्त को सम्मुख रखिये, जिसमें एक गाँव के दो निवासी पास पास रहते हैं। सम्पत्ति का झगड़ा उठ जाने पर बजाय इसके कि समझौता या कागजी कार्यवाही करें, उसमें एक व्यक्ति दूसरे की हत्या कर डालता है। हत्या करने की निषेधात्मक प्रेरणा उसे सामाजिक वातावरण से प्राप्त होती है।

(३) कठोर परिस्थितियाँ—यदि प्रौढ़ व्यक्ति कठोर परिस्थिति में पड़ जाय तो वह अपने व्यवहार को सन्तुलित कर सकता है। परन्तु बालक अपनी कठोर परिस्थिति को सहन नहीं कर पाता और सरलता से अपराध की ओर अग्रसर हो जाता है। जो बालक असुरक्षा-भाव से पीड़ित है, उसकी देख-रेख करने वाला कोई नहीं है, वह कठोर आर्थिक परिस्थितियों में पड़कर अपराध करने लगेगा। भारतीय सामाजिक संगठन ऐसा है कि बहुत से बालकों को गरीबी अथवा अनाथता जाति-प्रथा आदि के कारण विवश होकर चोरी, गिरहकटी आदि करना पड़ता है। बालक अभिभावकों के कठोर व्यवहार के कारण भी अपराधी हो जाता है।

इन बातों को ध्यान में रखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि

बालक के विचार, जीवन के मूल्य और व्यवहार के ढाँचे सभी कुछ सामाजिक वातावरण में निहित संस्कृति द्वारा प्राप्त होते हैं। सांस्कृतिक प्रभाव के समान ही बालक के चरित्र का निर्माण भी होता है। माता-पिता तथा निकट सम्बन्धी आदि बालक को सर्वाधिक प्रभावित करने वाले व्यक्ति होते है। उन्हीं को आदर्श मानकर वह उनका अनुकरण करता है तथा श्रेष्ठ समझ कर उनके निर्देशन का पालन करता है। यदि किसी का माता-पिता अपराधी है तो बालक को अपराध सीखते देर नहीं लगेगी। कुछ तो ऐसे ही होते हैं जो दूसरों की चीज चुराने तथा क्षति पहुँचाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। यह तो प्रत्यक्ष ढँग हैं, जिनके द्वारा बालक अपराधी बनता है। अप्रत्यक्ष रूप से घर का वातावरण उसे अपराधी बनाता है। जिस परिवार में माता-पिता और दूसरे सदस्य लड़ते झगड़ते रहते हैं, एक दूसरे के प्रति परस्पर सद्भावना नहीं रहती तो ऐसे वातावरण में पला हुआ बालक यदि अपराधी हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। टूटे हुए घर (Broken Homes) जिनमें झगड़ा और असुरक्षा पाई जाती है, उनमें पला हुआ बालक असामाजिक रहता है। यदि परिवार की आर्थिक दशा बहुत जर्जर है, तो भी बालक अपराध की ओर जा सकता है। बहुत से समृद्ध परिवार के बालक आदत बिगड़ जाने के कारण अपराध करते हैं। अनुचित लाड़ प्यार और अत्यधिक उपेक्षा दोनों ही बालक को बिगाड़ देते हैं। वास्तव में परिवार को नागरिकता का प्रारम्भिक पाठशाला कहना उचित है, परन्तु विघटित परिवार समाज के लिए अभिशाप हैं।

परिवार से निकल कर बालक पास पड़ोस के लोगों के सम्पर्क में आता है। उनके द्वारा प्राप्त निर्देशन और अनुकरण से प्रभावित होता है! बालक अन्य बालकों के साथ टोली में खेलता है। पास पड़ोस के लोग तथा साथी भी उसे दुर्व्यसन सिखलाते हैं।

विद्यालय का वातावरण यदि बहुत कठोर है तो बालक शिक्षा से भागकर अपराध की ओर जाएगा। वहाँ भी वह बुरे बालकों की संगति में पड़ सकता है। यदि बालक को स्कूल में खेलने और मनोरंजन की सुविधा प्राप्त न हुई तो भी वह अपराध में रुचि लेने लगेगा। इसी लिए स्कूलों में खेलने कूदने के लिए मैदान और सुविधायें प्राप्त होती हैं।

बालकों में यौन-प्रवृत्ति बड़ी उत्सुकता जगाती है। अतः उससे विवश होकर वे कुछ करें तो इसे अपराध नहीं समझना चाहिए। प्रायः बालकों के यौन सम्बन्धी जानकारी न होने के कारण और उनकी उत्सुकता असन्तुष्ट रहने के कारण उनमें अपराध की भावना जागृत होती है। यौन अपराध के लिए बालकों को दण्डित या लज्जित नहीं करना चाहिए, वल्कि उन्हें समझा बुझा कर अनुशासनवद्ध करना चाहिए। ऐसा भी देखा गया है कि कुछ प्रौढ़ व्यक्ति बालकों को यौन अपराध की ओर अग्रसर करते हैं। वे बालकों की उत्सुकता और उसकी सहानुभूति का अनुचित लाभ उठाते हैं। लालच देकर या उसे मनोरंजन की कोई सामग्री देकर यौन भटकाव में डाल देते हैं। टूटे हुए घरों के बालक ऐसे दुष्ट लोगों के चगुंल में सरलता से आ जाते हैं।

कुछ जातियाँ ऐसी होती हैं, जिनका पेशा ही अपराध करना रहता है। मध्यप्रदेश में कुछ ऐसी जँगली जातियाँ पाई जाती हैं, जो हर तरह के अपराध करके अपना जीवन निर्वाह करती हैं। चोरी, डाका, हत्या तो कोई महत्त्व ही नहीं रखता। यौन-अपराध एक साधारण घटना होती है, जिसको क्षमा करने के लिए जाति व्यक्ति पर जुर्माना लगाती है। स्त्रियों का क्रय-विक्रय होता है। अपराध करना एक अच्छी बात समझी जा सकती है। ऐसी जाति के परिवार में पले हुए बालक अवश्य ही अपराधी प्रवृत्ति के होंगे।

सामुदायिक तनाव बालकों को भी घृणा करना सिखलाता है। अप

ही आप बालक दूसरे समुदाय के बालकों से घृणा करने लगता है, और जिस तरह उसके बड़े लोग व्यवहार करते है, उसी प्रकार वह भी व्यवहार करता है। दूसरे समुदाय वालों के रीति रिवाज को बुरा भला कहना, उनके धर्म, भाषा और सभ्यता को बुरा कहना, उनका बहिष्कार करना आदि वह खूब जान जाता है। अवसर मिलने पर बालक दूसरे समुदाय वालों को हानि पहुँचाता हैं। कभी खेल ही खेल में उनके घरों में आग लगा दी जाती है। उनके बालकों को व्यभिचार की ओर प्रेरित करके दूसरे समुदाय के बालक प्रसन्न होते हैं। खेल कूद की स्पर्धा में भी उचित अनुचित ढंग से उन्हे नीचा दिखलाने का प्रयत्न किया जाता है। इसके विशेष वर्णन हम अध्याय ७ के 'सामुदायिक तनाव' के अन्तर्गत कर चुके हैं।

जिस तरह समुदायिक तनाव बाल-अपराध का कारण होता है, उसी प्रकार धार्मिक भिन्नता भी बाल अपराध को प्रोत्साहित करती है। धर्म का संकुचित अर्थ लगाने वाले दूसरे धर्म वालों को उपेक्षा की दृष्टि से देखने की शिक्षा देते हैं। दूसरे धर्म वाले को हानि पहुँचाना उसके जान माल को नष्ट करना, धार्मिक उद्देश्य की पूर्ति की शिक्षा देना आदि करते हैं। विडम्बना तो यह है कि बाल्यावस्था में प्राप्त सामान्य धार्मिक रूढ़ियाँ जीवन पर्यन्त नहीं दूर होती हैं।

आधुनिक नगरों का जीवन यंत्र के समान है। यहाँ पर लोग एक दूसरे को नहीं जानते। अतः ठगना, चोरी करना, हत्या करना, यौन भटकाव की ओर ले जाना साधारण बात है। घनी आबादी, गरीबी, और असुरक्षा इन अपराधो के मुख्य कारण हैं। बड़े बड़े नगरों के कुछ विशेष क्षेत्रों में ऐसे अपराधों की घटनायें अधिक होती हैं। अतः उस क्षेत्र विशेष में पले हुए बालक भी अपराधी हो जाते हैं। उस क्षेत्र का वातावरण ऐसा होता है कि आप ही आप बालकों को अपराधोन्मुख कर देता है।

आर्थिक कठिनाइयाँ परिवार को विघटित करती हैं। आर्थिक कठिनाई ग्रस्त परिवार का जीवन-स्तर नीचा होता है। लोगों को न ता उचित शिक्षा मिल पाती है और न तो उनकी इच्छायें पूरी हो पाती हैं। अतः पारस्परिक द्वेष स्वार्थपरता आदि का एक ऐसा वातावरण बन जाता है कि बालक जीवन की अच्छी बातें सीख नहीं पाता। वह ऐसी गन्दगी में रहता है, जहाँ प्रकाश की किरण नहीं पहुँचती। अतः ऐसे परिवार के बालक अपराधोन्मुख होते हैं। आर्थिक कठिनाईग्रस्त परिवार जब अपने बालकों की आवश्यक आवश्यकतायें भी पूरी नहीं कर पाते तो स्थिति और भी गम्भीर हो जाती है। जिस बालक को पेट भर भोजन नहीं मिलेगा, अंग ढकने को पर्याप्त वस्त्र नहीं होगा, न तो उसे उचित, शिक्षा' मनोरंजन और सहानूभूति प्राप्त होगी तो कैसे वह सन्तुलित व्यवहार कर सकता है। ऐसे अनेक उदाहरण मिलेगें कि केवल दो रोटी की लालच और मनोरंजन के लिए कुछ पैसे देकर बालकों से अपराध कर लिए जाते हैं।

उपरोक्त कारणों पर विचार करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अधिकतर अपराध विधायक स्थिति (Objective situation) के कारण ही होते हैं। परिवार, समुदाय, स्कूल और संस्कृति द्वारा विधायक स्थितियाँ बालक के सम्मुख उपस्थित की जाती हैं, जिनके कारण वह अपराध करता है। मनुष्य में अपराध करने की जन्म जात प्रवृत्ति नहीं पाई जाती। अपराध एक सामाजिक घटना है। यदि स्थिति में परिवर्तन कर दिया जाय तो बालक अपराधी नहीं होगा।

समस्या-बालक
(Problem Child)

प्रत्येक वस्तु की अधिकता हानिकारक होती है। बच्चों के जीवनमें अत्यधिक बाधा डालते रहने से न तो उनके व्यक्तित्व का विकास भली

प्रकार हो सकता है और न तो उसकी योग्यताओं का भली प्रकार प्रकाशन हो सकता है। समस्या-बालक के बारे में जानकारी प्राप्त करने से पूर्व सन्तुलित बालक की समस्यायें जान लेना ठीक होगा। सन्तुलित बालक हम उसे कहेंगे, जिसमें अनिर्णीत द्वन्द बहुत कम हों, जिसका व्यवहार घर और घर के बाहर उपद्रवी न हों। अपनी आयु के व्यवहार के माप दण्ड के अनुसार व्यवहार करे। सन्तुलित बालक न तो अपने लिए समस्या होता है न तो दूसरे के लिए। इसके विरुद्ध समस्या—बालक सामान्य व्यावहारिक मापदण्ड से भटके हुए हैं। हम समस्या-बालकों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से कर सकते है :—

(१) मानसिक अयोग्यता वाले बालक (Mentally Defeci ent children)

(२) पिछड़े बालक (Backward children

(३) बालापराधी बालक (Young deliquents)

मानसिक अयोग्यता वाले बालक—मानसिक अयोग्यता वाले बालक की बुद्धि उपलब्धि ७० या ५० से भी कम होती है। दुर्बल पैतृक जीवाणु और ग्रंथियों की असन्तुलित क्रिया तथा कुछ छूत की बीमारियों (चेचक टी० बी० आदि) के कारण उनके बुद्धि का विकास नहीं हो पाता। यदि बालक को समाज से अलग रक्खा जाय तो भी उसमें बुद्धि नहीं उत्पन्न होने पाती। ऐसा उन बालकों से पता चला है जिन्हें भेड़िये उठा ले गये थे।

पिछड़े हुए बालक—प्रायः हम शिक्षा सम्बन्धी प्राप्ति के लिए आधार पर बालकों को पिछड़ा हुआ मानते हैं। यदि कोई बालक अपने आयु के बालकों की तुलना में शिक्षा सम्बन्धी कार्यों में दुर्बलता दिखलाता है, तो उसे हम पिछड़ा हुआ बालक कहते हैं। शिक्षा में पिछड़े होने के कारण बालक में बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया होती है। वह इतना निराश हो जाता है कि

असामाजिक कार्यों की ओर झुक जाता है। स्कूल में बालक के पिछड़ेपन के अनेक कारणों में से शारीरिक, बौद्धिक, आर्थिक, सामाजिक एवं भावनात्मक कारण उल्लेखनीय हैं। जो परिवार छोटे गन्दे घरों में रहते हैं, जिनके बालकों की शिक्षा दूसरों पर निर्भर है, जो प्रायः पिछड़े रहते है, ऐसे बालकों की शिक्षा स्कूल पर निर्भर रहती है। परिवार से उन्हें किसी प्रकार की शिक्षा और प्रेरणा नहीं मिलती। इसके अतिरिक्त संवेगीय असन्तुलन, असुरक्षा और भय के कारण बालक पिछड़ा रह जाता है। पिछड़े बालक को सुधारने के लिए घर और विद्यालय के वातावरण में सुधार आवश्यक है। ऐसे बालकों पर व्यक्तिगत ध्यान देना चाहिए। माता-पिता को शिक्षित करना अत्यावश्यक है।

बालापराधी बालक—बाल अपराध एक प्रकार का विद्रोह है। बालक परिवेश को बदलने और ध्वंस करने के हेतु आक्रामक व्यवहार करता है। यह व्यवहार साधारण उदण्डता से लेकर चोरी करना, सेंध लगाना, यौन अपराध और हत्या करने तक पहुँच सकता है। लगभग ८०% बाला अपराधी बालक चोरी करते हैं। २८% क्रोध में आकर झगड़ा लड़ाई करते हैं। ७.८% घुमक्कड़, २१.५% विद्यालय से भागने वाले २.४% ठगने का अपराध करते हैं। अपराधी बालकों में सजातीय और विजातीय यौन अपराध पाये जाते हैं। बालापराध के कारणों पर हम पहले ही प्रकाश डाल चुके हैं। यहाँ केवल इतना ही बता देना आवश्यक है कि ऊँचे आदर्श या चिकनी चुपड़ी बातों से अपराधी बालकों को सुधारा नहीं जा सकता है। परिवेश से परिवर्तन के साथ मनोवैज्ञानिक उपचार करने पड़ेगें।

समस्या-बालक का व्यवहार

हम नीचे कुछ ऐसे व्यवहारों का वर्णन करते हैं जो थोड़ी बहुत मात्रा में प्रायः समस्या बालकों में पाई जाती है।

(१) निषेधात्मकता (Negativism)—बड़ों की आज्ञा की अवहेलना करना ही निषेधात्मकता कहलाती है। डेढ़ वर्ष की अवस्था से वालक में यह व्यवहार उत्पन्न हो सकता है। बालक से उसकी क्षमता वाहर की आशा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि असफल हो जाने पर वालक निषेधात्मक हो जाता है। माता-पिता के द्वारा एवं विद्यालय में निरादरित होकर वालक निषेधात्मक हो जाता है। वालक से सहानिभूति पूर्ण व्यवहार करने और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने से वालक में व्यवहार की समस्या निर्मूल हो सकती है।

(२) झूठ बोलना—झूठ वोलना कुअभियोजन का परिणाम है। जो वालक टूटे घरों से आते हैं या निरादरित होते हैं, उनमें यह आदत अधिक पाई जाती है। मार्गन (Margan) ने वालकों द्वारा बोले जाने वाले झूठों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—(अ) खेल सम्बन्धी झूठ-कल्पना को सत्य वनाने का प्रयत्न करने के लिए झूठ बोलना। (आ) अयोग्यता या अनुभवहीनता के कारण किसी घटना का उचित रूप से वर्णन न करना। (इ) दूसरों का ध्यान आर्कषित करने के लिए झूठ बोलकर अपना महत्त्व बढ़ाना। (ई) प्रति-शोध की भावना के कारण झूठ बोलना (ए) स्वार्थ-सिद्धि के लिये झूठ बोलना। (ऐ) सहानूभूति के कारण झूठ वोलना। जैसे अपने किसी मित्र को वचाने के लिए कोई वालक झूठ बोले।

झूठ वोलना कोई भयकंकर अपराध नहीं है। सत्य और असत्य में अन्तर न कर पाने के कारण भी बालक झूठ बोलता है। झूठ कभी-कभी हवाई किले वनाने के लिए भी बोले जाते हैं। झूठ की आदत वालक में परिवार से आती है। माता-पिता स्वयं झूठ बोलकर वालकों के समक्ष उदाहरण प्रस्तुत करते है।

(३) स्कूल से जी चुराना (Truancy)—अध्यापक या अभिभावक की जानकारी के बिना ही विद्यालय से आने को ट्रूएन्सी यल कूसोस

जी चुराना कहते हैं। इसके दो रूप होते हैं—या तो बालक माता-पिता की जानकारी में विद्यालय से भागता है या बिना उनकी जानकारी के भागता है। सहपाठियों के चिढ़ाने अध्यापकों का कठोर व्यवहार या पढ़ने में अरुचि के कारण स्कूल से भागने की आदत बालकों में पड़ जाती है। हीनता की भावना से मुक्ति पाने लिए अथवा स्वतन्त्र विचरण करने के लिए बालक स्कूल से भाग जाता है। यदि अपराधी बालकों की संगत हो जाय तो उनके बहकावे में आकर कुछ बालक छोटी मोटी चोरी या सामान तोड़ने फोड़ने पर दण्ड के डर से भग जाते हैं। स्वतंत्र रूप से काम करके अपना महत्त्व स्थापित करने के लिए चेष्टा करने वाले भाग जाते हैं। कुछ ऐसे कठिन विषय जैसे गणित, साहित्य और विज्ञान आदि में रुचि न रखने के कारण उसे कक्षा की पढ़ाई नीरस प्रतीत होती है कुछ अध्यापक ऐसे पढ़ाते है जिससे किन्हीं कारणों से बालक को विचित्र घृणा होती है, जिससे बालक भग जाना चाहता है। जी चुराने की आदत बालकों में १३-१४ वर्ष के लगभग पाई जाती है। गरीब घराने के अभिभावकों को अपने बालकों पर ध्यान देने का अवसर नहीं मिलता। अतः उनके बालक पढ़ाई लिखाई से अधिक जी चुराते हैं। मनोवैज्ञानिक तौर पर कहा जा सकता है कि माँ बाप द्वारा अस्वीकृति पाने पर निराश होवे और दिवा-स्वप्न देखने के कारण बालक पढ़ने लिखने से जी चुराते हैं।

(५) चिड़चिड़ापन—के कारण बालक कभी कभी दूसरों को मारने पीटने और काटने लगता है। यह अवगुण, माँ-बाप द्वारा बालक का पालन पोषण, गलत ढंग से करने के कारण ही आता है। यदि नहाने-खिलाने और कपड़े पहनाने में बालक के साथ अमनोवैज्ञानिक व्यवहार किया गया तो वह चिड़चिड़े स्वभाव का हो जाता है। बालक के खेलकूद में विघ्न डालने या उनकी आवश्यकता की पूर्ति न करने से दुर्गुण आ जाता है। इसे दूर करने के लिए बालक की मनोदशा जानना आवश्यक है। बालककी प्रत्येक उचित अनुचित इच्छा की पूर्त्ति करके उसे प्रसन्न नहीं किया जा

सकता। स्मरण रहे कि बालक की प्रसन्नता और उसका सन्तुलित विकास मानवीय सम्बन्ध पर निर्भर है। परिवार और स्कूल में यदि बालक के साथ सहनुभूति पूर्ण व्यवहार किया जाय तो उसमें बहुत से व्यवहार सम्बधी दुर्गुण नहीं आयेंगे।

बालक के लिए परिवार और विद्यालय में प्यार का वातावरण होना चाहिए। सन्तुलित सामाजिक परिस्थितियाँ हों, और एक अच्छी स्वस्थ शिक्षा नीति हो, तभी बालक का सर्वांगीण स्वस्थ विकास सम्भव है। इन सुविधाओं के होते हुए भी, माता-पिता-सन्तान सम्बन्धी निर्देशन केन्द्र (Parent Child Guidance Clinic) होने चाहिए, जो माता-पिता और बालक को उचित परामर्श दे सकें।

(४) आक्रामक बालक (Aggressive children)—जब बालक की इच्छा का दमन होता है तो विघ्न डालने वाली परिस्थितियों से वह विद्रोह कर बैठता है। इस प्रकार उसका व्यवहार आक्रामक हो जाता है। आक्रमणकारी व्यवहार, सर्वदा परिवेश में पाये जाने वाले, विघ्नों द्वारा उत्पन्न होता है। यह भी देखा गया है कि जो बालक वाह्य व्यवहार में निडर, शक्तिशाली और उद्दन्ड लगता है वह अन्दर से डरपोक, भयभीत और अनिश्चित प्रकृति का होता है। कभी-कभी आक्रामक व्यवहार साधारण रूप छोड़कर चोरी, यौन-अपराध, लूटमार और हत्या तक पहूँच जाता है। आक्रमणकारी बालक दूसरों को सता कर आनन्द लेते हैं।

जब कई बालक दूसरों को हानि नहीं पहुँचा पाता तो उसका क्रोध पलट कर स्वयं पर आ जाता है और वह स्वयं को ही मारने-पीटने लगता है, अपना सर फोड़ने और बाल नोचने का कार्य प्रारम्भ कर देता है तथा कभी-कभी आत्महत्या भी कर लेता है। प्रतिदिन के जीवन में यदि बालक को स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त होती है और प्रत्येक क्रिया-कलाप पर तीव्र दृष्टि रक्खी जाती है तो वह आक्रमणकारी हो जाता है। ऐसे समस्या बालक को क्रीड़ा चिकित्सा (Play-Therapy) द्वारा सुधारा जा सकता है।

खेलते समय बालक में संवेग और शक्ति को रचनात्मक मार्ग मिल जाता हैं।

(५) हठी बालक—कभी-कभी बालक इतना उत्तेजित हो जाता है कि पूर्णत: विवेक खोकर हठकर बैठता है। हठ करने के कारण द्वेष डाह, और अस्वीकृत किए जाने के भाव होते हैं। बालक दूसरों से बदला लेने और किसी दुर्व्यवहार को विरोध में भी हठ करता है। यदि कोई बालक यह देखता है कि हठ करने से उसकी इच्छा की पूर्ति हो जाती है, तो वह और भी हठ करने लगता है। ऐसे बालकों को उपयोगी कार्यों में लगाकर सुधारा जा सकता है।

(७) संकोची और लजालु बालक—कुछ बालक ऐसे होते हैं ज दूसरों से अलग रहना पसन्द करते हैं। वे संकोची और शर्मीले होते हैं उनमें सामाजिकता का विकास नहीं होता। जिन बालकों को प्यार और सहानुभूति नहीं मिलती या किसी कारण से वे अपने को अयोग्य पाते हैं,। उनमें ऐसा व्यवहार पाया जाता है। बालकों को हर समय भला-बुर कहने तथा अत्यधिक शासन रखने से भी वे अपने को अपने को दूसरों से अलग रखना पसन्द करते हैं।

(८) निद्रा-मूत्रदोष तथा अनिद्रा (Enuresis and Insonia) निद्रावस्था में अनैच्छिक रूप से मूत्र-त्याग को निद्रा-मूत्र दोष कहते हैं यह दोष अवश्य ही संवेगात्मक उथल-पुथल के कारण होता है। लेकिन कभी-कभी माँ-बाप के दुर्व्यवहारों का बदला लेने के लिए बालक सोते पेशाब कर देता है। प्रायः लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए भी बालक चारपाई पर मूत्र त्याग कर देता है। यौन प्रवृत्ति के कारण भी ऐसा होता है, परन्तु बालक के साथ दुर्व्यवहार ही इसका मुख्य कारण होता है। अनिद्रा की बीमारी उन लोगों में होती है जो किसी अपराध भावना से पीड़ित होते हैं अथवा मानसिक रूप से उत्तेजित-

रहते हैं। किसी ज्ञात या अज्ञात भय के कारण भी ऐसा होता है। यह दोष बालक के चरित्र सम्बन्धी चिकित्सा से दूर होता है।

(१) हकलाहट (Stammering)—मस्तिष्क की अधिक क्रियाशीलता और भाव संवेगोत्तेजन के कारण बालक हकलाने लगता है। यौन प्रवृत्ति को दवाने अथवा अपराध भावना से ही हकलाहट उत्पन्न होती है। असुरक्षा और तिरस्कार की अवस्था में बालक में यह दोष उत्पन्न हो जाता है। हकलाहट को दूर करने के लिये बालक की उत्तेजित अवस्था को शान्त अवस्था में वदलना आवश्यक है। मनोवैज्ञानिक उपचार गाने, कहानी कहने तथा लय से वोलने से यह कमी दूर हो सकती है।

बाल-अपराधी का उपचार

बालक को केवल कोरा उच्चादर्श सिखलाकर सुधारना कठिन है। जब तक विधायक परिस्थिति में परिवर्तन नहीं होगा तबतक बाल-अपराध के व्यवहार की समस्या का समाधान नहीं हो पायेगा। सुधार करने के लिए व्यक्ति और वरिवेश दोनों में परिवर्तन आवश्यक है। जब तक परिवार के सदस्य, माता-पिता तथा अध्यापक मानसिक एवं नैतिक आधार पर सुदृढ़ नहीं होंगे तब तक बालकों से स्थायी, अच्छे और सन्तुलित व्यवहार की आशा नहीं की जा सकती। आधुनिक युग में प्राचीन काल के समान अपराधी को कुकर्मों पर पश्चाताप करने के लिए नहीं छोड़ा जाता है बल्कि उसे सुधार कर समाजोपयोगी बनाया जाता है। अपराधी बालकों का सुधारने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाये गये हैं :—

बाल-अपराधी-न्यायालय (Juvenile Court)—बाल-अपराध के निर्णय के लिए विशेष प्रकार के न्यायालय होते हैं, जिनमें वकालत और गवाही नहीं होती, बल्कि बालक की मनोदशा और परिस्थितियों का विश्लेषण किया जाता है। बाल-अपराधी न्यायालय का न्यायाधीश, जो कि मनोवैज्ञानिक या समाज-सुधारक होता है, धैर्य से बालक के जीवन

इतिहास का अवलोकन करते हुए, गृह परिस्थिति, पाठशाला-व्यवस्था, अभिभावक का व्यवहार आदि की भी जानकारी प्राप्त करके, बालक को सुधारे जाने का उपाय निश्चित करता है। कभी-कभी न्यायाधीश स्वयं समझा बुझाकर बाल-अपराधी को मुक्त कर देता है। यदि सुधार होने में देर की सम्भावना होती है, तो उसे सुधार गृह में भेज दिया जाता है। इन न्यायालयों का उद्देश्य बाल-अपराधी को सजा देना नहीं होता, बल्कि मनोवैज्ञानिक नियमों और सिद्धान्तों का सहारा लेकर बालकों को सुधारना होता है।

बाल-अपराध न्यायालय के लिए जैसे न्यायाधिकारी की आवश्यकता है, वैसे बहुत कम प्राप्य हैं। भारतवर्ष में ऐसे न्यायालय तो कुछ नगरों में ही हैं। अन्य स्थानों पर इसका अभाव है। ऐसे न्यायालयों के लिए अधिक व्यय की आवश्यकता है, जिसे केन्द्रीय और राज्य सरकारें वहन करना नहीं चाहती। देश की जनता भी इतनी अशिक्षित और पिछड़ी है कि बाल-अपराधियों को सुधारने में सहयोग नहीं दे पाती। बालापराध को छिटफुट तरीकों से दूर नहीं किया जा सकता। यह एक सामाजिक घटना है और जब तक पूर्ण समाज को नियोजित रूप में सुधारा नहीं जाएगा तब तक बाल-अपराध दूर नहीं हो सकता। जिस प्रकार आर्थिक क्षेत्र में योजना (Planing) हो रही है, उसी प्रकार सामाजिक योजना (Social Planing) द्वारा नागरिकता का स्तर उठाने का सुव्यवस्थित प्रयत्न करने पर बालापराध भी कम हो जाएगा।

(२) पूर्व-निर्मुक्ति (Probation)—बाल-अपराध सुधार कार्य क्रम के अन्तर्गत न्यायधीशों को यह अधिकार है कि किसी बालापराध को साधारण समझने पर उसे जेलखाने की सजा न देकर उसे सुधार के लिए पूर्व निर्मुक्ति अधिकारी की देखरेख में छोड़ देते हैं। यह अधिकारी मनोवैज्ञानिक ढंग से मनोवैज्ञानिक एवं सहानुभूति पूर्ण व्यवहारों द्वारा बालक को सुधारने का प्रयत्न करते है। पूर्व-निर्मुक्ति अधिकारी

समय समय पर बालापराधी से मिलकर उसे परामर्श दिया करता है। व्यवहार में यह देखा जाता है कि यह अधिकारी समाज-सेवा की भावना न रखकर नौकरशाही व्यवहार करते हैं। अतः अधिकारी और अपराध का भेद बना रहता है। इस कार्यक्रम की सफलता पर गम्भीर सन्देह होता है। यदि पूर्व-निर्मुक्ति अधिकारी समाज-सेवा और त्याग-भावना से अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करे तो अवश्य लाभ हो सकता है।

(३) बाल-सुधार गृह (Reformatory School)— बाल्य-काल विकास की अवस्था है। बालक के समक्ष सुधरने के लिए पूरा भविष्य पड़ा रहता है। अतः बालापराधी को सुधार गृह में भेज दिया जाता है। उचित मार्ग पर विकसित होने का अवसर दिया जाता है। कारावास में बाल-अपराधी और वयस्क अपराधी साथ-साथ रक्खे जाते हैं, जिनके कारण बालकों में अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं। बाल-अपराधी को सुधार-गृह में बालकों के साथ ही रहना पड़ता है। देख रेख के लिए परिचारिकायें मनोचिकित्सक और शिक्षक होते हैं। ये लोग बालक के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर ध्यान रखते हैं। उन्हें शिक्षा के साथ-साथ खेलकूद, अभिनय, प्रतियोगिता, रचनात्मक कार्य द्वारा सन्तुलित किया जाता है। उन्हे इस प्रकार प्रशिक्षित किया जातौं है कि वे बाहर निकल कर अपने परिवेश से अभियोजन स्थापित कर लें। इसमें बालक का जीवन नियमित हो जाता है, परन्तु ऐसे सुधार गृह हमारे देश में बहुत कम हैं।

अध्याय

: ६ :

भीड़

Crowd

ध्यान आकर्षण केन्द्र के आस-पास जमा हो जाने वाले लोगों के प्रत्यक्ष, अस्थायी और असंगटित को भीड़ कहते हैं। जिस तरह चुम्बक बिखरी हुई सूइयों को खींच लेता है, उसी तरह कुछ सुनकर, देखकर, या जानकर, व्यक्ति भी इकट्ठा होने लगते हैं। भीड़ के जमा होने के लिए सामान्य रुचि का होना आवश्यक है। केवल लोगों के जम घट को भीड़ नहीं कहते, जैसे बारात, परिवार, कक्षा सेना, आदि। ये जमावड़े सभ्यता की कुछ मान्यताओं के आधार पर होते हैं। किम्बाल यंग ने भीड़ के दो प्रकार बताए हैं :—

(१) स'स्थागत भीड़ (Institutionalized crowds)— जिनकी रचना एवं व्यवहार कुछ रीति'रिवाज और सभ्यता के सुगम नियमों के आधार पर होता है। इनमें संवेगात्मक व्यवहार की मात्रा कम होती है। जैसे स्टोडियम में मैच को देखने वाला जन समूह।

(२) क्रिया:त्मक भीड़ (Action crowd)—इस प्रकार की भीड़ य संवेगात्मक व्यवहार होते हैं। इन दोनो को क्रमश: निष्क्रिय और सक्रिमें (Passive and Active) भीड़ कह सकते हैं।

भीड़ की विशेषतायें—

१—भीड़ के लिए सामान्य ध्येय का होना आवश्यक है। साथ ही

साथ भीड़ के सभी सदस्य एक ही प्रकार के संवेगों का अनुभव करते हैं। उनका यह पारस्परिक सम्बन्ध क्षणिक, गत्यात्मक और संवेगात्मक होता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि भीड़ एक सीमित स्थान पर हो उभयनिष्ठ आकर्षण के आस-पास जमा हो सकती है।

२—भीड़ के लिए संख्या निर्धारित नहीं की जा सकती, परन्तु इतने लोगों का जमाव होना चाहिए कि साक्षात्कार (Face to Face) न हो सके। व्यक्तियों का कन्धे से कन्धा रगड़ खाता है, निकटतम शारीरिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, जिसके कारण एक सामान्य उत्तेजना उत्पन्न होती है।

३—इस उत्तेजना से एक सामूहिक शक्ति का अनुभव होता है।

४—ध्यान आकर्षण-केन्द्र व्यक्तियों से अलग वाह्य रूप से प्रस्तुत होती हैं।

५—वे लोग जो आकर्षण-केन्द्र के समीप होते हैं, वे अधिक उत्तेजित और क्रियाशील हो सकते हैं। परन्तु भीड़ के किनारे-किनारे पाये जाने वाले व्यक्ति उतने उत्तेजित नहीं होते। कभी-कभी कन्धे वाला सम्बन्ध बिगड़ कर रेल-पेल, धक्का-धुक्की और आगे-पीछे हटने का व्यवहार करने वाला हो जाता है।

(६) भीड़ के सभी सदस्यों में ज्ञानात्मक, भावनात्मक, और इच्छात्मक एकता पाई जाती है। सभी व्यक्ति एक ही प्रकार से सोचते और एक ही प्रकार से कार्य करते हैं। भीड़ एक मनोवैज्ञानिक इकाई होती है।

(७) भीड़ के सदस्यों में संवेगात्मकता प्रबल होती है। फलस्वरूप साहसिक और उपद्रवी व्यवहार सम्भव होते हैं।

(८) भीड़ व्यवहार में सामाजिक मान्यता पाई जाती है। समाज जिसे भीड़ के लिए मान्य समझता है, उसे व्यक्ति के लिए मान्य नहीं समझता।

(६) भीड़ के सदस्यों में उत्तरदायित्व का भाव नहीं होता। व्यापकता के भाव के कारण कोई भी, अपने को किसी भी कार्य का उत्तरदायी नहीं समझता। अपना विवेक खोकर, सब के सब यंत्र के समान कार्य करने लगते हैं। भीड़ अपनी स्वीकृति या माँगों को नारों द्वारा प्रकट करती है, जैसे ठीक है, बढ़े चलो, मारो–काटो, 'रोजी रोटी कपड़ा दो, वर्ना कुर्सी छोड़ दो।' इत्यादि

आगवर्न और निम काफ (Ogburn and Nimkoff)—के अनुसार भीड़ को रचना प्रधान न समझकर क्रिया प्रधान समझना चाहिए। उनके अनुसार भीड़ की एकमात्र विशेषता उत्तेजना है। जैसे एक जोशीले फुटबाल के मैच देखने वाले जनसमूह को हम भीड़ नहीं कहेंगे। किन्तु आगवर्न के अनुसार जब इन दर्शकों में संवेग का संचार हो जाता है और वे ऐसे व्यवहार करने लगते हैं, जैसे सीटी बजाना, ताली बजाना, हूट करना हैट और छतरी उछालना, शोर मचाना, तो वे भी भीड़ का रूप धारण कर लेते हैं। इसी प्रकार धार्मिक भाषण को सुनने वाले शान्त श्रोता उपद्रवी भीड़ में परिवर्तित हो सकते हैं। सुगठित सेना में विद्रोह हो जाने के कारण भीड़ के लक्षण प्रकट हो सकते हैं।

क्रियात्मक भीड़ (Action Crowd)—क्रियात्मक भीड़ में दबी हुई मनोवृत्तियों इच्छाओं और भावनाओं का प्रस्फुटन होता है। किम्बल यंग ने क्रियात्मक भीड़ उसे माना है, जिसमें प्रेम, भय क्रोध और आक्रामक प्रवृत्तियों का समावेश होता है। उपद्रवी भीड़ दो प्रकार से क्रियाशील होती है—या तो "जिसे पाओ उसे मारो" या आंतकित होकर भागना (Panic flight) ऐसी अवस्थाओं में लूट-मार करना, आग लगाना तोड़ फोड़ करना आदि सामान्य घटनायें हैं। क्रियात्मक भीड़ दो प्रकार की होती है :—

(१) आक्रमणकारी उपद्रवी भीड़ (Riot Crowd)—ऐसी

भीड़ में जो जिसे पाता है उसे पीटता और लूटता है। न्याय और अन्याय का विचार किये विना ही जान-माल को हानि पहुँचाई जाती है। जब इनका रूप साम्प्रदायिक हो जाता है तो एक सम्प्रदाय वाले दूसरे सम्प्रदाय वालों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं। भारतवर्ष में हिन्दू-मुस्लिम दंगे इस प्रकार की भीड़ के जीवित उदाहरण हैं। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में गोरे और निग्रो जातियों में इसी प्रकार के उपद्रवी दंगे हुआ करते हैं। इस भीड़ का मुख्य उद्देश्य क्रोध में क्षति पहुँचाना ही होता है। मैकडूगल का कहना है कि ऐसी भीड़ का व्यवहार अनुशासन-हीन वालक के समान अथव क्रोधी असभ्य जंगली व्यक्ति के समान होता है और कुछ विशेष परिस्थितियों में तो भीड़ जंगली-जानवर की तरह खूँखार हो जाती है, ऐसा भीड़-व्यवहार एक प्रकार का अस्थाई पागलपन (Temporary insanity) है।

(२) आतंकित भीड़—आतंकित भीड़ का निर्माण एकाएक उत्पन्न होने वाली किसी ऐसी परिस्थिति से होता है, जैसे किसी मेले में हाथी विगड़ जाय अथवा साँड़ लड़जाँय, किसी घिरे हुए स्थान में आग लग जाय। स्थिति के उत्पन्न होते ही लोग इस तरह भयभीत होते हैं कि आतंक और भी भयंकर मालूम होता है। व्यक्ति समझता है यह अकेला ही खतरे का मुकाविला कर रहा है। वह दूसरों की उपस्थिति को भूल जाता है। भागने में आदमी, आदमी को कुचल डालते हैं। वालक स्त्री और वृद्ध का विचार समाप्त हो जाता है और लोगों को अपनी ही अपनी पड़ जाती है। सन् १९५३ में समाप्त हुए कुम्भ (प्रयाग) के मेले में आतंकित भीड़ के कारण ही सैकड़ों आदमी कुचल कर मर गये। उत्सवी भीड़ (Celebrating Crowd) जो किसी समारोह के मनाने अथवा किसी पर्व पर एकत्रित होती है—चारो तरफ आनन्द और उल्लास का वातावरण रहता है, उसी में कभी-कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि आतंक फैल जाता है।

क्रियात्मक भीड़ का मनोवैज्ञानिक आधार—क्रियात्मक भीड़ अनुकरण और निर्देशन, मूल प्रवृत्ति और संवेग सामूहिकता का बोध और चेतन तथा अचेतन प्रवृत्तियों के कारण निर्गति और गतिशील होती है।

(१) अनुकरण और निर्देशन—अनुकरण वह सामान्य प्रवृत्ति है, जिसके वशीभूत होकर हम जाने अनजाने दूसरे का रोल (Role) अदा करते हैं। नकल की प्रवृत्ति एक समुदाय में रहने वाले लोगों में अधिक रहती है। इसका आधार संस्कृति होती है। क्रियात्मक भीड़ में अनुकरण करने के सचेत प्रयत्न नहीं होते।

निर्देशन उस प्रवृत्ति को कहते हैं, जिससे प्रेरित होकर हम दूसरों के सुझाव को बिना आलोचना किये स्वीकार कर लेते हैं। निर्देशन योग्यता, आयु, लिंग. बौद्धिक स्तर व्यक्तित्व का प्रकार और विभिन्न मनोदैहिक अवस्थाओं पर निर्भर होती है। थकावट, भूख, कम सोने, और नशे में, निर्देशन योग्यता बढ़जाती है। अनुकरण और निर्देशन क्रियात्मक भीड़ को उत्तेजित करने में सहायक होता है।

भीड़ को उत्तेजित करने में अफवाह द्वारा उत्पन्न निर्देशन बहुत सहायक होता है। ऐसी अफवाहों के द्वारा कल्पना और संवेग को झकझोर कर रख दिया जाता है। संवेग को जगाने के लिए संवेगोत्तेजक नया काल्पनिक प्रतिमाओं के निर्माण के लिए तरह-तरह की मनगढ़न्त कहानियाँ सुनाई जाती हैं। किम्वाल यंग ने अफवाह फैलाने के निम्न तरीकों को बताया है—

(१) मौखिक गप शप्प द्वारा (२) तार, टेलिफोन और पत्र द्वारा। (३) समाचार-पत्र, रेडियो, फिल्म पत्रिकाओं और पुस्तिकाओं द्वारा। अफवाहों को सुन सुन कर हम ऐसे प्रभावित हो जाते हैं कि पैट्रिक के शब्दों में "वस्तुएँ जैसी हैं उन्हें उस रूप में न देखकर हम उन्हें उप रूप में देखते हैं, जैसे हम हैं।"

(२) सामान्य प्रवृत्तियाँ—ऐसी भीड़ का जो क्षण भर में लगती है और क्षण भर में दूर हो जाती है, कारण मनुष्य में पाई जाने वाली कुछ सामान्य प्रवृत्तियाँ होती है। अद्भुत दृश्य देखकर अथवा विचित्र ध्वनि सुनकर उत्सुकता जाग उठती है। सन्तोष प्राप्त करने के लिए आदमी घटनास्थल पर पहुँच जाता है। इसके अतिरिक्त सुरक्षा, प्रतिष्ठा, प्रेम, और ध्येय भी भीड़ के निर्माण में सहायक होते हैं।

(३) सामाजिक बोध—जब भीड़ एकत्रित हो जाती है तो उभयनिष्ठ उत्तेजना के कारण "जैसा सब करते हैं वैसा करने की प्रवृत्ति" जग जाती है। इस प्रवृत्ति के कारण कोई भी व्यक्ति अपने को उत्तर-दायी नहीं समझता है। कन्धों की रगड़, गर्दन का खिंचाव, कानों की झनक और आँखों की पुतलियों के तनाव के कारण एक ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने को सभी से सम्बन्धित पाता है। इसी कारण देखा गया है कि भीड़ में समझदार लोग भी नासमझी का कार्य कर बैठते हैं। सामाजिक बोध का एक आवश्यक परिणाम यह होता है कि व्यक्ति का बौद्धिक स्तर नीचा हो जाता है।

भीड़ में नेता का महत्व—

भीड़ के निर्माण में नेता विशेष भूमिका प्रदान करता है। उसकी लोकप्रियता, तर्क और बुद्धि मिलकर लोगों को निर्देशित करते हैं। जैसा वह कहता है, वैसे ही भीड़ करती है। भीड़ को उत्तेजित करने वाले नेता बड़े चालाक होते हैं। किसी समुदाय की विशेषताओं के अनुसार वे ऐसी बात कहते हैं कि लोगों को जोश आ ही जाता है। यदि नेता न हो तो भीड़ का आकर्षणकेन्द्र समाप्त हो जाय और वह धीरे धीरे तितर बितर हो जाय। वह लोगों को एकत्रित करता है और उनके मन में छिपी हुई इच्छाओं और भावनाओं को अपने शब्दों से जगा कर उन्हें कार्य के लिए प्रेरित करता है। समयानुसार वह ऐसे सामाजिक प्रतीकों

और दन्तकथाओं का प्रयोग करता है कि भीड़ के सदस्यों के अस्पष्ट विचार जाग उठते हैं। सामूहिक कार्य के लिए वह भीड़ का पथ प्रदर्शन करता है। 'मारो' 'काटो' 'आग लगाओ' का निर्देश वही करता है। भीड़ उसके आदेशों को विना सोचे समझे मान लेती है। नेता को चाहिए कि वह भीड़ की सामूहिक चेतना और संवेग के स्तर को समझ कर निर्देशन दे। कभी-कभी देखा गया है कि भीड़ अत्यधिक उत्तेजित है और नेता को शान्ति बनाये रखने के लिए प्रार्थना करनी पड़ती है। भीड़ ऐसे नेता को तुरन्त हटा कर किसी जोशीले नेता को स्थापना करती है। अतः नेता को निर्देशन देने में चतुराई से कार्य लेना चाहिए।

भीड़ की नैतिकता—

भीड़ में नैतिकता का स्तर नीचे गिर जाता है। न्याय-अन्याय की मर्यादायें मिट जाती हैं। सामाजिक रीति-रिवाज उपेक्षित कर दिए जाते परन्तु भीड़ अपने कार्यों को किसी न किसी नैतिक स्तर पर उचित ठहराती है। भीड़ का नेता इस माप दण्ड को निर्धारित करता है। डीनमार्टिन ने लिखा है कि जो लोग ध्वसांत्मक कार्य में लग जाते हैं उनका यह विश्वास होता है कि वे अनुचित को उचित रूप दे रहे हैं। भारतवर्ष में होने वाले साम्प्रदायिक दंगों के पीछे धार्मिक एवं साम्प्रदायिक मान्यताओं को उचित ठहरा कर लाखों वेगुनाहों की जाने ली गई।

भीड़ में यह प्रवृत्ति होती है कि वह अपने पूर्ण न्याय संगत (Absolute Right)और दूसरे को पूर्णतः अन्यायी मानती है। आगा-पीछा, लाभ-हानि सोचना भीड़ के लिए सम्भव नहीं है। फ्रॉयड के अनुसार भीड़ में "अहम्" का स्तर नीचा हो जाता है और दबी हुई असामाजिक अतृप्त वासनायें, उपद्रवी कार्यों का कारण वन जाती हैं।

भीड़ पर नियंत्रण—भीड़-व्यवहार किसी समुदाय की सभ्यता के अनुसार निर्धारित होता है। समुदाय जितना ही कम सभ्य होगा, भीड़ के कार्य उतने ही ध्वसांत्मक होंगे। आधुनिक सभ्य समुदायों

की भीड़ में पुरुष अथवा स्त्रियों को उस प्रकार सताया नहीं जा सकता जिस प्रकार प्रारम्भिक समुदायों में हुआ करता था। सभ्यता अपनी मान्यताओं से भीड़ के व्यवहार की अविवेकशीलता को रोक सकती है और उत्तेजनात्मक कार्यों को कम कर सकती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सभ्यता भीड़ पर नियंत्रण रख सकती है। शिक्षा द्वारा भीड़ की उच्छृङ्खल और उपद्रवी प्रवृत्तियों को यदि मिटाया नहीं जा सकता तो कम अवश्य किया जा सकता है।

भीड़ व्यवहार की व्याख्या

लेबान और मैकडूगल (Lebon and Mc Daugall) का सामूहिक मन का सिद्धान्तः—

भीड़ में पड़े हुए लोगों की आयु, बुद्धि, और व्यवसाय से भिन्नता होते हुए भी, उनमें एक ऐसा सामूहिक भाव उत्पन्न होता है कि सब लोग एक सा-व्यवहार करने लगते हैं। भीड़ का एक सामूहिक मन बन जाता है। इसके अधीन भीड़ का व्यक्ति ऐसे ऐसे कार्य करता है, जो भीड़ से अलग वह नहीं करता। भीड़ में व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियों को छूट मिल जाती है। इसमें उत्तरदायित्व का भाव मिट जाता है। भीड़ के अतिरिक्त अन्य स्थितियों में व्यक्ति अपनी मूल-प्रवृत्तियों को नियन्त्रित किये रहता है। भीड़ द्वारा उत्पन्न विचार और कार्य संक्रामक रूप से फैलते हैं यहाँ तक कि व्यक्तिगत स्वार्थ छोड़ कर व्यक्ति सामूहिक स्वार्थ के अनुसार व्यवहार करने लगता है। अपनी इच्छा त्याग कर व्यक्ति, यंत्र के समान कार्य करने लगता है। भीड़ में आक्रामक व्यवहार के साथ-साथ जोश और वीरता का भी प्रदर्शन होता है।

लेबान (Lebon) के अनुसार भीड़ व्यवहारका कारण—

(अ) निर्देशन (ब) विचारों का संक्रामक रूप से फैलना। (स) एक प्रकार की अदृश्य शक्ति का उत्पन्न होना, जिसके अधीन होकर व्यक्ति

विवेक-शून्य होकर मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार करने लगता है।

मैक्डूगल (Mc-daugall) की व्याख्या लेबान की व्याख्या से मिलती जुलती है। वे भी भीड़ के सामूहिक मन (group mind) के व्यवहार में विश्वास करते हैं। भीड़ संवेगोत्तेजक अस्थिर और अतिशयोक्तिपूर्ण कार्य करती है। विचारों में उच्छृंखलता और निर्णयों में जल्दबाजी से कार्य लिया जाता है। भीड़ का व्यवहार जंगली जानवरों की तरह खूंख्वार हो जाता है।

सिगमन फ्रायड (Sigman Freud) का मनोविश्लेषण का सिद्धान्त—

फ्रायड के मतानुसार मताधिकार मनुष्य मूलप्रवृत्तियों और बर्बरता का पुंज है। सामाजिक परिस्थितियाँ उसकी बर्बरता को रोके या दबाये रहती हैं। अवसर पाते ही सामाजिक-दमन का आवरण हट जाता है और मानव के अन्दर छिपा हुआ दानव प्रकट हो जाता है। सामाजिक अन्त: करण को फ्रायड अतिअहम् (Super-Ego) कहता है। अतिअहम् द्वारा हमारे नैतिक एवं सामाजिक व्यवहारों का संचालन होता है। भीड़ में अति-अहम् के बन्धन ढ़ीले पड़ जाते हैं और मनुष्य मूलप्रवित्यात्मक व्यवहार करने लगता है फ्रायड के अनुसारभीड़-व्यवहार एक प्रकार का अस्थायी पागलपन है

एफ० एच० अलपर्ट (F H. Allport) का सामाजिक-व्यापन (Social facilitation) का सिद्धान्त :—

अलपर्ट ने मैक्डूगल के मत को अस्वीकार किया है, क्योंकि भीड़ में ऐसे भी व्यक्ति रहते हैं जो भीड़-व्यवहार से प्रभावित नहीं होते। जबकि मैक्डूगल के अनुसार व्यक्ति को भीड़ के साथ हँसना और रोना आवश्यक है। अलपर्ट ने सामाजिक व्यापन का सिद्धांत प्रस्तुत किया है। भीड़ में शारीरिक स्पर्श के कारण व्यक्तित्व में 'बहुलता और विशालता का भाव जाग्रत होता है। बहुत से लोगों को एक ही प्रकार से व्यवहार

करते देखकर प्रत्येक व्यक्ति में यह विचार उठता है कि " सभी ऐसा कर रहे हैं.इस लिए मैं भी ऐसा करूँ।" अपने को व्यक्ति समूह के अस्तित्व में में सम्मिलित (Social Projection) करके देखता है। अलपर्ट के अनुसार भीड़ व्यवहार का कारण व्यक्ति के अपने प्रणोदन (Drives) हैं। अतः भीड़ व्यवहार का कारण सामूहिक मन (group mind) नहीं वरन् वैयक्तिक मन(Individual mind) है।

पूर्वोक्त सिद्धान्तों की आलोचना उपस्थित करना प्रस्तुत पुस्तक के अन्तर्गत आवश्यक नहीं है। अतः हम भीड़ व्यवहार की ऐसी व्याख्या प्रस्तुत करना चाहते हैं जो भीड़ व्यवहार की जटिलता को स्पष्ट कर सके। भीड़-व्यवहार की व्याख्या रचना (Structure) के अनुसार नहीं बल्कि क्रिया (function) के अनुसार करनी चाहिए। बिना भीड़ एकत्रित हुए भी भीड़-व्यवहार सम्भव हैं। जैसे किसी बस्ती में यह सनसनी फैल जाय कि बालकों को उठा ले जाने वाले व्यक्ति या दल पहुँच गये हैं, । इस समाचार को सुनकर लोग इतने भयभीत और आतंकित हो जाते हैं कि जिस पर तनिक भी सन्देह हुआ उसे मारने पीटने लगते हैं। सन् १९५८ में उत्तर प्रदेश के कुछ नगरों में अफवाह फैल गयी कि कुछ ऐसे अपराधी हैं जो लोगों को अकेला पाकर उनका खून निकाल लेते हैं। इसका इतना आतंक फैल गया कि बहुत से भागों में स्वास्थ्य विभाग के निर्दोष कर्मचारी पिट गये। ऐसे व्यवहार जन-समूह एकत्रित न होते हुए भी भीड़ व्यवहार के समान हैं। अतः भीड़ व्यवहार की व्याख्या रचना द्वारा न करके हम क्रिया द्वारा करना उचित समझते हैं। भीड़-व्यवहार एक ऐसा जटिल-व्यवहार है जिसमें मानव-स्वभाव, समुदाय और संस्कृति का प्रभाव समझना आवश्यक है। भीड़ में जो कुछ भी होता है उसके बीज व्यक्ति में पहले से ही वर्तमान रहते हैं। व्यक्ति के व्यवहार की रूपरेखा संस्कृति द्वारा निर्धारित होती है। अतः भीड़ को व्यक्ति से पृथक एक विचित्र व्यवहार इकाई के रूप में स्वीकार करना अनुचित

है। व्यक्ति के व्यवहार की सीमायें भीड़ व्यवहार की सीमाएँ हैं।

व्यक्ति, सम्वेगात्मक व्यवहार, केवल भीड़ ही में नहीं करता। वल्कि एकान्त में भी वह उत्तेजित होकर उत्तेजनात्मक व्यवहार करता है। मनुष्य, भीड़ में आने जाने से पूर्व भी, एक संवेगशील पशु है। भीड़ में आ जाने से केवल इतना होता है कि उसमें चिन्तन के बदले संवेगात्मकता बढ़ जाती है। वास्तव में, भीड़ के अन्दर व्यक्ति जो भी व्यवहार करता है, उसके भाव पहले से ही उसमें अन्तर्निहित रहते हैं। व्यक्ति के पैतृक प्रभाव और जीवन के अनुभव उसके भीड़ व्यवहार को निर्धारित करते हैं। किसी भी भीड़-व्यवहार की सीमा उसके सदस्यों की आदतों की सीमा से निर्धारित होती है। भीड़ क्या करेगी, यह इस बात पर निर्भर हैं कि भीड़ के व्यक्तिगत विचार, मानसिक स्थिति और प्रणोदन (drives) उससे क्या करायेंगे? भीड़ में पड़ कर कोई भी व्यक्ति केवल वही दुष्कर्म कर सकता है, जिसके बीज उसमें पहले से ही वर्तमान है। जिस दुष्कर्म की प्रवृत्ति उसमें पहले से निहित नहीं है भीड़ में पड़ कर भी वह उस कर्म को नहीं कर सकता।

व्यक्ति का भीड़-व्यवहार समूह द्वारा प्रभावित होता है। बचपन से व्यक्ति अपने सम्बन्ध में, दूसरों के विचारों और निर्णयों से प्रभावित होता रहता है। प्रशंसा प्राप्त करने के लिए वह दूसरों की इच्छा के अनुसार सीख जाता है। दूसरों के विचारों और कार्यों को विना आलोचना किये स्वीकार करने की उसमें प्रवृत्ति पाई जाती है। दूसरों द्वारा प्रभावित होने की प्रवृत्ति भी व्यक्ति में पहले से ही रहती है। अतः भीड़ में पड़ते ही व्यक्ति भीड़ द्वारा प्राप्त निर्देशन के अनुसार व्यवहार करने लगता है। निर्देशन, जितने ही महत्वपूर्ण स्रोत से प्राप्त होता है, उतना ही वह प्रभावशाली होता है। शक्तिशाली, अधिकारी और सम्मानित व्यक्ति द्वारा दिया गया निर्देशन सरलता से ग्रहण कर लिया जाता है। भीड़ की शक्ति और सम्मान उसकी विशालता (Prestige of size) है। विशाल जन-

समूह से प्राप्त निर्देशन व्यक्ति को भलीभाँति प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त भीड़ के अन्दर व्यक्ति अपने को सुरक्षित पाता है। अतः सुरक्षा-भाव से वह ऐसा व्यवहार भी कर बैठता है जो समाज और शासन द्वारा प्रतिबन्धित होता है।

जैसा कि हम बता चुके हैं कि भीड़ में व्यक्ति जैसा व्यवहार करता है वह आकस्मिक नहीं होता, बल्कि उन आदतों और विचारों के अनुसार होता है जिन्हें वह पहले से ही ग्रहण किए रहता है। व्यक्ति का सामाजीकरण करने में संस्कृति का महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है। व्यक्ति के आचार विचार-जीवन के मूल्य, सामाजिक परम्परायें और समूह की स्वीकृति आदि तमाम बातों का माप-दण्ड संस्कृति द्वारा निर्धारित होता है। प्रत्येक सभ्य समाज, भीड़ के ऐसे व्यवहार जैसे आग लगाना, हत्या या लूटमार करना, अच्छा नहीं समझता। ऐसे व्यवहारों की निन्दा करके वह भीड़-व्यवहार को नियन्त्रित करता है। अतः भीड़-व्यवहार की रूप रेखा संस्कृति द्वारा निर्धारित और नियन्त्रित होती है।

श्रोतृगण

(Audience)

श्रोतृगण एक संस्थागत जन-समूह है। लोगों का जमाव सभ्यता की कुछ मान्यताओं के अनुसार होता है। दिशा बन्धन के ढर्रे (Pattern of polarisation) तथा समारोह के आचार और संस्कार भी सभ्यता के मूल्यों द्वारा ही निर्धारित होते हैं। श्रोतृगण वह जन-समूह है, जो किसी पूर्व-निश्चित स्थान पर किसी विशेष ध्येय से, निश्चित समय पर एकत्रित होता है। जैसे चित्र-पट के दर्शक छवि-गृह में एकत्रित होते हैं, नेहरूजी के भाषण को सुनने के लिए श्रोता दूर दूर से आकर एकत्रित होते हैं। अपने प्रिय कलाकार के दर्शन के लिए दर्शकों का समूह टूट पड़ता है। किसी महात्मा के प्रवचन को सुनने के लिए श्रद्धालुजन

काफी रात तक बैठे रहते हैं।

किसी नाट्यशाला की कल्पना कीजिए, जहाँ श्रोतृगण जमा हों, प्रदर्शन अभी प्रारम्भ न हुआ हो, तब लोग एक-दूसरे से बात-चीत में लीन रहते हैं। परन्तु पर्दा उठते ही एक दम सन्नाटा छा जाता है। और सबके ध्यान का दिशाबन्धन रंग-मंच की ओर हो जाता है। यदि सम्पूर्ण स्थिति का विश्लेषण किया जाय तो दो प्रकार पाये जाते हैं। पहला वह जिसमें एक का दूसरे से सम्बन्ध रहता है। दूसरा वह जिसमें सब का एक से सम्बन्ध होता है और एक का सबसे सम्बन्ध होता है। दूसरा ही सम्बन्ध श्रोतृगण का सम्बन्ध है। इसी को सार्वजनिक दिशाबन्धन कहते हैं।

प्रकार—श्रोतृगण का उचित वर्गीकरण बड़ा ही कठिन है। एक सीमित बैठक या गोष्ठी को श्रोतृगण नहीं कहेंगे। यदि उनमें से एक कुछ कहने लगे और सबके सब सुनने लगे तो श्रोतृगण की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। अतः कार्य और संगठन श्रोतृगण का स्वरूप निर्धारित करते हैं। किम्बालयंग ने दो प्रकार के श्रोतृगण बतलाए हैं—(१) निष्क्रिय (२) सक्रिय। निष्क्रिय श्रोतागण चुपचाप प्रदर्शन को देखते अथवा भाषण को सुना करते हैं। वे अपना प्रभाव किसी तरह भी प्रदर्शक या वक्ता पर नहीं डालते हैं। परन्तु क्रियाशील श्रोता या दर्शक अपने व्यवहारों से प्रदर्शक या वक्ता को प्रभावित करते हैं। जैसे फुटबाल के मैच में शोर मचाकर खिलाड़ियों को उत्साहित करना या कवि सम्मेलनों में कवियों को 'हूटिंग' द्वारा हतोत्साहित करना। किम्बालयंग ने श्रोतृगण को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है—(१) सूचना प्राप्त करने वाले श्रोतृगण (२) मनोरंजन प्राप्त करने वाले श्रोतृगण तथा (३) ऐसे श्रोतृगण जिन्हें प्रभावित करके परिवर्तित किया जा सके।

ला-पियर (La-Piere) ने श्रोतृगण का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—(१) नाट्य श्रोतृगण (२) भाषण श्रोतृगण।

श्रोतृगण की विशेषतायें—श्रोतृगण की निम्न मूल विशेषतायें हैं—(१) उसका एक निश्चित उद्देश्य होता है। (२) वह पूर्व निश्चित स्थान पर, निश्चित समय पर एकत्रित होते हैं। (३) दिशाबन्धन और अन्तर प्रक्रिया का स्तर होता है (४) श्रोतृगण के बैठने का प्रबन्ध प्रायः ऐसा किया जाता है कि दिशाबन्धन सरलता से हो सके। प्रायः सीटें पंक्तियों में अथवा अर्द्ध चन्द्राकार रूप में सजायी गई होती हैं। (५) वक्ता या अभिनेता का स्थान ऊँचा, मंच की सजावट और प्रकाश की व्यवस्था ऐसी होती है, जिससे दर्शकों या श्रोताओं का दिशाबन्धन सरलता से हो जाय। (६) सीटों का प्रबन्ध ऐसा रहता है कि कन्धे से कन्धे का सामीप्य नहीं रहता। दो सीटों में इतना फासला रहता है कि भीड़ की प्रवृत्ति नहीं जागने पाती। (७) कभी-कभी उत्तेजनापूर्ण प्रदर्शन के कारण ये श्रोतृगण उपद्रवी भीड़ का रूप भी ग्रहण कर लेते हैं। (८) ध्येय के अनुसार श्रोतृगण की संख्या को ध्यान में रखकर स्थान का चुनाव किया जाता है। स्थान की सजावट, उसका तापमान, प्रकाश हवा और बैठने की व्यवस्था दिशाबन्धन में सहायक होते हैं। (९) जब श्रोतृगण और प्रदर्शक में सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तो प्रदर्शक को श्रेष्ठ समझने का भ्रम उत्पन्न हो जाता है। श्रोतृगण अपने को निष्क्रिय कर लेते हैं। (१०) एक अच्छा अभिनेता या वक्ता अपने दर्शकों या श्रोताओं को अपने साथ बहा ले जा सकता है। उन्हें हँसाता, रुलाता तथा उनकी प्रशंसात्मक ध्वनियों से हाल को गुंजाता रहता है। परन्तु यदि गम्भीर वैज्ञानिक भाषण देते समय, ऐसा कार्य करता है तो उचित नहीं समझा जाता। (११) केवल प्रदर्शक श्रोतृगण को ही प्रभावित नहीं करता बल्कि श्रोतृगण भी प्रदर्शक को प्रभावित करते हैं।

श्रोतृगण की मनोवैज्ञानिक स्थिति—श्रोतृगण और प्रदर्शक के सम्बन्ध की आदि से अन्त तक एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया होती है, जिसमें ध्यान आकर्षित करने के प्रारम्भिक प्रयत्न, दिशाबन्धन की स्थापना,

भावों का एकीकरण (Rapport), निर्देशन और प्रेरित करने की क्रियायें सम्मिलित हैं। श्रोतृगण को आकर्षित करना और अभिरुचि को बनाये रखना सभ्यता की पृष्ठभूमि पर निर्भर करता है।

ध्यान आकर्षित करने के प्रारम्भिक प्रयत्न—इस प्रयत्न के अन्तर्गत वे बातें आती है, जिनके द्वारा हम श्रोतृगण में प्रदर्शन के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करते हैं। जैसे, विज्ञापन, समाचारपत्रों, रेडियो तथा फिल्मों द्वारा प्रचार, होने वाले प्रदर्शन के उद्देश्य की व्याख्या इत्यादि। इनके द्वारा श्रोतृगण में प्रदर्शन के सम्बन्ध में वाद-विवाद छिड़ जाता है और वे प्रदर्शन की प्रतीक्षा करने लगते हैं। कार्यक्रम आरम्भ होने से पहले मन्दिर में घन्टा और शंख बजाया जाता है। छवि-गृह में बत्तियाँ बुझाई या जलाई जाती हैं। पटाखों का विस्फोट होता है इनके होते ही श्रोतृगण सजग होकर प्रदर्शन पर ध्यान केन्द्रित कर लेते हैं

भावों का एकीकरण—प्रदर्शन का उद्देश्य प्रारम्भिक ध्यान आकर्षित करने वाले प्रयत्नों द्वारा यही होता है कि वे भावों का एकीकरण करा दें। सामूहिक-गान से पृथकता टूट जाती है। सबका सबसे सम्बन्ध जुट जाता है। बोलने वाले की शैली, स्वरों पर बल देने के ढंग इत्यादि से भावों का एकीकरण स्थापित होता है। प्रदर्शन की सामग्री को ऐसा व्यवस्थित किया जाना चाहिए कि पुनरावृत्ति कम हो। परन्तु चरम सीमा का विकास सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया जाना चाहिए। इस प्रकार भी भावों की एकता स्थापित होती है। भाषणोपरान्त श्रोताओं के प्रश्नों द्वारा भी भावों की एकता स्थापित होती है। ऐसे भाषण प्रदर्शन, जिनका बाह्य रूप तो तार्किक हो परन्तु आन्तरिक अभिप्राय संवेगोत्तेजक हो तो भी भावों के एकीकरण में सहायता मिलती है।

प्रजातंत्र में श्रोतृगण का महत्व—प्रजातांत्रिक व्यवस्था ने वृहद समाज को उत्पन्न किया है। प्रत्येक नागरिक आज की व्यवस्था में अधिकार रखता है, परन्तु वह इतना पिछड़ा और अनभिज्ञ है कि अपने

उत्तरदायित्व का निर्वाह भलीभाँति नहीं कर पाता। शिक्षा-व्यवस्था द्वारा हमें नागरिकों के ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करना होगा जो बदलते हुए समय की गति के अनुसार चल सकें। इसके लिए आवश्यक है कि नागरिक का सर्वांगीण विकास हो और उसमें स्वस्थ रुचियाँ पाई जाँय, जिन्हें सन्तुष्ट करने के लिए वह सभ्य श्रोतृगण के रूप में एकत्रित होकर लाभ उठावें। देखा जाता है कि हमारे देश में होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रम बहुधा हुल्लडबाजी, आवाजकशी और ऐसे ही अन्य निम्नस्तरीय व्यवहारों के अखाड़े हो जाते हैं। यह देश में बढ़ती हुई सांस्कृतिक उच्छृङ्खलता, निरुद्देश्यता और अस्वस्थ रुचियों की परिचायक है। इसको दूर करने में शिक्षा व्यवस्था आंशिक रूप से सहायक हो सकती है।
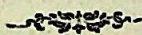
अध्याय

: ७ :

सामुदायिक जीवन

अरस्तू ने मनुष्य के विषय में कहा है कि वह एक राजनैतिक जीव है। इस कथन के अनुसार मनुष्य प्राकृतिक अवस्था में नहीं रहता बल्कि सांस्कृतिक और सभ्यता की स्थिति में रहता है। मनुष्य ने जो सर्वांगीण उन्नति की है, वह सामुदायिक जीवन द्वारा ही सम्भव हो सकी है। सामूहिकता की कोई मूल-प्रवृत्ति मनुष्य में नहीं पाई जाती। सामूहिक जीवन तो मानवीय आवश्यकताओं पर आधारित एक अनिवार्य आवश्यकता है सामूहिकता का भाव सीखने का फल है। मनुष्य का बच्चा बहुत दिनों तक दूसरों पर निर्भर रहता है। अतः मानव जाति को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए समुदाय की विशेष आवश्यकता है। बालक बहुत सी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि समुदाय के द्वारा ही करता है। सामुदायिक जीवन सुख का कारण होता है। समुदाय द्वारा सराहे जाने पर व्यक्ति को अनुपम सुख की अनुभूति होती है। इसके विपरीत ठुकराये जाने पर उतना ही दुःखहोता है। समुदाय में मनोवैज्ञानिक एकता तथा व्यवस्था पाई जाती है। एकता की कमी के कारण अल्पकालीन तनाव भी उत्पन्न हो जाते हैं परन्तु साधारणतः समुदाय एकता और परस्परिक सहयोग पर ही आधारित है। प्रत्येक समुदाय का एक आदर्श होता है। उसी के अनुरूप उसके सदस्यों का व्यवहार होना चाहिए। यदि वे आदर्श से विचलित होते हैं, तो समुदाय उनपर तरह तरह के दबाव डालकर उचित मार्ग पर लाता है। समुदाय से बहिष्कृत होने का भय बड़ा प्रबल

होता है। 'हुक्का पानी बन्द हो जाने' अथवा 'दुनिया क्या कहेगी !' के डर से समुदाय की एकता और स्थिरता बनी रहती है। सदस्यों के व्यवहारों का संचालन समुदाय की नीति तथा राजनैतिक, सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों द्वारा होती है।

मानव-जीवन में समुदाय जिस प्रकार कार्य करते हैं, उसी के अनुसार उनकी सार्थकता निर्धारित होती है। मानव जीवन समुदायों से पूर्ण है परन्तु समुदायों द्वारा उत्पन्न प्रभाव और अनुभूति में बड़ी भिन्नता पाई जाती है। समुदायों को मोटे तौर पर दो वर्गों में विभाजित किया जाता है—

(१) अपना समुदाय (In-Group) (२) पराया समुदाय (Out Group)—

अपना समुदाय—अपने समुदाय के सदस्य एक दूसरे से सहानुभूति रखते हैं। उनके व्यवहारों में सद्भाव और सहानुभूति होती है। उनमें अपनत्व की भावना और व्यक्तिगत सम्पर्क पाया जाता है—'कुछ भी हो वह अपने ही लोगों में से एक है।' यह विचार समुदाय के सदस्यों को एक सूत्र में बाँधता है। कभी कभी सदस्य अपने समुदाय वालों पर अन्ध-विश्वास रखता है। उनके प्रत्येक उचित अनुचित कार्यों का समर्थन करता है।

पराया समुदाय—जिस समुदाय के प्रति पृथकता और वैमनस्य की भावना रहती है, उसे पराया समुदाय कहते हैं। हम पराये समुदाय के किसी सदस्य को व्यक्ति न मान कर समुदाय का प्रतिनिधि मानते हैं और अपने घृणा और वैमनस्य के भाव के अनुसार उसे किसी नाम से पुकारते हैं। आज समाज इतने विभिन्न संकुचित समुदायों में विभाजित हो चुका है कि एक दूसरे समुदाय के सदस्य की हँसाई और रुलाई को भी शंका की दृष्टि से देखा जाता है। कुछ सामाजिक दोषों और प्राकृतिक अभिशापों का कारण भी पराये समाज को मान लिया जाता है। संक्षेप

में पराया समुदाय हमारे मन की घृणा और वहिष्कृत भावनाओं का लक्ष्य होता है।

आधुनिक युग में सामुदायिक अपनत्व की भावना

प्रारम्भिक समाज में पराये समुदाय के लोग शत्रु समझे जाते थे। इस भय से कि कहीं वे आक्रमण न करें उनपर पहले ही आक्रमण कर दिया जाता था। वे समुदाय छोटे होते थे और उनमें अपनत्व की भावना वड़ी प्रबल होती थी। परन्तु आधुनिक युग में जव कि मानव सभ्यता इतनी आगे वढ़ चुकी है, तव भी अपने और पराये-समुदाय की भावना कमजोर नहीं पाई जाती है। एक विचार धारा के लोग दूसरी विचार धारा वालों से वैमनस्य रखते हैं और डटकर उनका विरोध भी करते हैं। जैसे आर्य-समाजी. सनातनधर्मी, गान्धीवादी तथा व्यक्तिवादी आदि विचार धाराओं के समूह। छोटे-छोटे सामाजिक आर्थिक स्वार्थों को लेकर गुटवाजियाँ, साधारण घटना हो गई हैं। एक नगर के रहने वाले दूसरे नगर में जाकर अपना समुदाय वना लेते हैं। एक विश्वविद्यालय से निकले स्नातक अपना विशिष्ट समुदाय बना लेते हैं। परन्तु आधुनिक युग में एक महत्वपूर्ण अन्तर यह पाया जाता है कि कोई व्यक्ति एक विशिष्ट समुदाय का सदस्य होते हुए भी दूसरे समुदाय के प्रति वफादार हो सकता है। अपने समुदाय के प्रति वफादारी उतनी गहरी नहीं रह गयी, जितनी प्रारम्भिक समुदाय में होती थी। यदि समुदाय अपने किसी सदस्य को वहिष्कृत भी कर दे तो इस युग में विशेष कठिनाई नहीं उपस्थित होगी।

सी० एच० कूली ने समुदायों का वर्गीकरण (१) प्रारम्भिक और (२) माध्यमिक समुदायों में किया है। प्रारम्भिक समुदाय वह होता है, जिसके सदस्यों का सम्बन्ध आमने सामने का होता है और जिनमें बालक प्रारम्भ से ही भाग लेता है जैसे परिवार, खेल का मैदान, पड़ोस और प्रारम्भिक पाठशालायें आदि। इन समुदायों में व्यक्तिगत सम्पर्क अधिक

होता है जिसके कारण बालकों पर सजीव छाप पड़ती है। आधुनिक युग में प्रारम्भिक-समुदाय छिन्न-भिन्न हो गये हैं, जिसके कारण आज के बालक-बालिकाओं में वह प्यार, शिक्षा और सहानुभूति नहीं उप्पन्न होने पाती जो पहले हुआ करती थी।

प्रारम्भिक समुदायों के अतिरिक्त वे समुदाय जिनमें घनिष्ठता कम पाई जाती है, माध्यमिक समुदाय कहलाते हैं। इस युग में एक व्यक्ति अनेकों ऐसे समुदायों का सदस्य हो सकता है। माध्यमिक समुदाय के सम्बन्ध अप्रत्यक्ष होते हैं। केवल समय समय पर ही व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित होता है। कुछ समुदाय तो केवल पत्रव्यवहार पर ही निर्भर होते हैं। परन्तु आमने सामने न होते हुए भी घनिष्ठता के आधार पर प्रारम्भिक और माध्यमिक समुदायों का विभाजन सन्तोषजनक नहीं है।

सामुदायिक तनाव (GROUP TENSION) के कारण

सहयोग और विरोध के गुण, जीव में प्राकृतिक रूप में पाये जाते हैं। मानव-प्राणी किसी न किसी सांस्कृतिक वातावरण में रहता है। इस लिए उसके व्यवहारों पर सांस्कृतिक विशेषताओं का प्रभाव महत्वपूर्ण है। पैदा होने से मरने तक व्यक्ति के व्यवहार संस्कृति द्वारा ही संशोधित होते रहते हैं। किसी समुदाय के प्रति हमारी मनोवृति सहयोगपूर्ण अथवा असहयोग पूर्ण होगी, इसका निर्णय संस्कृति ही द्वारा होता है। आधुनिक समाज में सामुदायिक तनाव के कारण निम्न-लिखित हैं :—

(१) स्पर्धा—आधुनिक समाज स्पर्धा की तीव्र प्रक्रिया पर आधारित है। प्रत्येक व्यक्ति इस दौड़ में दूसरे को पछाड़ कर निकल जाना चाहता है। यही इच्छा जब सामूहिक रूप ले लेती है, तो सम्पूर्ण समुदाय स्पर्धा के लिए उतरे हुए अन्य समुदायों से द्वन्द्व ग्रस्त हो जाता है। समुदाय के सदस्य स्पर्धा द्वारा जिन लक्ष्यों की प्राप्ति करना चाहते हैं वे संस्कृति द्वारा निर्धारित

होते हैं जैसे सामान्यतः पूँजीवादी देशों में लोग धनोपार्जन करके मरना चाहते हैं। परन्तु कुछ ऐसी भी जातियाँ हैं, जिनमें दान देना ही सर्वोत्तम कार्य समझा जाता है। उस जाति का धन इकट्ठा करके मरने वाला, व्यक्ति असम्मान की दृष्टि देखा जाता है। कुछ समुदाय ऐसे हैं, जो दूसरे समुदाय के सदस्य की हत्या पर उत्सव मनाते हैं।

आज का पूँजीवादी समाज व्यक्तिवादी उन्नति को महत्व देता है। प्रत्येक व्यक्ति उन्नति के चरम शिखर पर पहुंच जाना चाहता है। जनतन्त्र के कारण कोई व्यक्ति किसी पद पर आसीन सकता है अथवा धनोपार्जन के लिए वह स्वतन्त्र है। व्यक्तिवादी आदर्शों से प्रेरित हो कर, स्पर्धा के द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति के लिए समस्त समाज अनगिनत परस्पर विरोधी समुदायों में विभक्त हो गया है। इन समुदायों में आये दिन खुल्लम खुल्ला या गुप्त रूप से द्वन्द्व हुआ करते हैं।

(२) असुरचा की भावना—कार्ल-मैनहाइन के अनुसार आधुनिक युग में असुरक्षा की भावना इतनी प्रवल है कि व्यक्ति और समुदाय दोनों ही के व्यवहार असन्तुलित हैं। युद्ध, दुर्घटना, राजनैतिक उथल-पुथल और बेकारी आदि ऐसी समस्यायें हैं, जिनके कारण व्यक्ति भयभीत रहता है। भय से अविश्वास उत्पन्न होता है और जब समुदायों में भय और अविश्वास घर कर जाता है तो वे एक दूसरे से लड़ने-झगड़ने लगते है अपने समुदाय की स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए दूसरे समुदाय को क्षति पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं; कभी-कभी तो उन्हें बिल्कुल निर्मूल करने का प्रयत्न किया जाता है जैसे जर्मनी के नाजी समुदाय ने यहूदियों को मिटा देने का प्रयत्न किया था। आधुनिक औद्योगिक कर्मचारी तीन प्रकार की मूल असुरक्षा भावनाओं से पीड़ित हैं :—

(अ) नौकरी छूट जाने का भय (ब) बीमारी और दुर्घटना के कारण धनोपार्जन शक्ति ह्रास हो जाने का भय (स) वुढ़ापे में पैसे-पैसे के लिए मुहताज हो जाने का भय।

इस युग में असुरक्षा का संगठित रूप हो चुका है। अतः रोजी-रोटी तथा अवकाश वृत्ति के लिए कर्मचारियों और मालिकों मे नित्य संघर्ष जारी रहता है और इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि सुरक्षा प्रदान करने वाले साधनों पर हमारे ही समुदाय का आधिपत्य स्थापित हो। असुरक्षा, सामुदायिक तनावों का महत्वपूर्ण कारण है।

(३) शक्ति की इच्छा—प्रजातंत्र में सामाजिक एवं राजनैतिक प्रभाव जमाये रखने के लिए विभिन्न समुदायों में द्वन्द्व चला करते हैं। ये द्वन्द्व अल्पकालीन और दीर्घकालीन दोनों होते हैं। शक्ति की चाह ने पागलपन का रूप धारण कर लिया है। हमारे देश में भी सामुदायिकता बहुत विकराल रूप धारण कर चुकी है। शक्ति प्राप्त करने के लिए सभी प्रकार के उचित अनुचित हथकण्डे अपनाये जाते हैं।

(४) विधारण (Prejudice)—विधारण उन मनोवृत्तियों को कहते हैं जो हम किसी व्यक्ति या वस्तु के बारे में पहले ही से उत्पन्न कर लेते हैं। विधारण रंगीन दिखाई देती है। किसी प्रकार विधारण उत्पन्न हो जाने के बाद, हमें सारे तथ्य उसी के अनुरूप दिखाई देते हैं। मनोवैज्ञानिक अनुसन्धानों से पता चला है कि विधारण की योग्यता जन्म जात नहीं है। इसे व्यक्ति संस्कृति और दूसरों के सम्पर्क से सीखते हैं। विधारण उत्पन्न होने के कुछ कारण निम्नलिखित हैं—

(अ) गन्ध—हम जिन लोगों के निकट सम्पर्क में नहीं रहते हैं, अकस्मात उनका सम्पर्क हो जाने पर उनके शरीर से विशेष प्रकार की गन्ध उत्पन्न होने का अनुभव होता है।

(ब) वर्ण—मानव जातियाँ काली, गोरी, पीली आदि कई रंगों की पाई जाती हैं। इनके आधार पर भी पृथकता की भावना उत्पन्न हो जाती है।

(स) स्पर्श—एक निग्रो की त्वचा का स्पर्श करके श्वेतवर्ण का बालक साँप के स्पर्श का अनुभव करता है। वेश-भूषा वालों की असा-

धारण कटाई तथा अभूषशण इत्यादि को देखकर पृथकता का भाव उत्पन्न होता है ।

(द) भाषा—अपरिचित भाषा से पृथक समुदाय का बोध होता है ।

इन कारणों के अतिरिक्त सामाजिक दूरी भी विधारण का कारण है । जिनसे हम अलग रहते हैं उनके बारे में विभिन्न प्रकार की भ्रान्तियाँ हमारे मन में घर कर जाती हैं । आधुनिक युग में राष्ट्रीय और राजनीति में विधारण का महत्त्वपूर्ण स्थान है । उदाहरणार्थ अमेरिकावासी साम्य-वादी देशों के लोगों से अकारण ही बड़ी घृणा करते हैं, उसी प्रकार साम्यवादी देशों के निवासी अमेरिकावासियों से । विधारण पूर्णतः दूर होना तो असम्भव है परन्तु प्रजातांत्रिक अधिकार, शिक्षा, निकट सम्पर्क और सांस्कृतिक आदान-प्रदान से इसमें कमी आ सकती है ।

एक समुदाय के लोग दूसरे समुदाय के बारे में विभिन्न प्रकार से विधारित होते हैं । जैसे हमारे देश में हिन्दू और मुसलमान आपस में एक दूसरे के प्रति पूर्व निश्चित धारणायें रखते हैं । किसी भी कारण उत्तेजना उत्पन्न होते ही समस्त विधारण प्रक्रिया उत्पन्न होकर, सेतनाव का कारण बन जाती है ।

(५) हीनता ग्रंथि—आधुनिक प्रजातांत्रिक एवं औद्योगिक युग में कुछ समुदाय आर्थिक और राजनैतिक रूप से दूसरों से अधिक प्रभाव शाली हैं । फलस्वरूप उनसे निम्नस्तर वाले समुदाय के सदस्यों में निराशा घृणा, असुरक्षा और हीनता के भाव आ जाते हैं । जिनके कारण तनाव बढ़ जाता है । पांरस्परिक द्वन्द्व बढ़ कभी-कभी आक्रामक रूप धारण कर लेते हैं ।

(६)नीरसता —आधुनिक युग में मानव-जीवन यांत्रिक हो गया है । मशीन की भाँति काम करते करते जीवन में घुटन और नीरसता आ जाती है । व्यक्ति इतना ऊबा हुआ होता है कि नवीनता एवं मनोरंजन की क्षुधा शान्ति करने के लिए सामुदायिक तनावो में फँस जाता है । इस

तनाव से कुछ परिवर्तन, कुछ जागरूकता, कुछ व्यस्तता, प्रतीत होती हैं, जिससे उसका दिल बहल जाता है।

(७) वैज्ञानिक आविष्कार—वैज्ञानिक आविष्कारों ने अति-शीघ्र इस संसार को संकुचित स्थिति से निकाल कर व्यापक समाजमें परिवर्तित कर दिया है। पहले संसार छोटे-छोटे भागों में विभक्त था, परन्तु अब पृथक-कता समाप्त होती जा रही है। परन्तु इस अल्प-कालीन अवधि में मानव-स्वभाव में परिवर्तन नहीं हुआ। उसकी सभ्यता में बहुत से जंगली युग के तथ्य वर्तमान हैं। जिसके कारण सामुदायिक तनाव उत्पन्न होता रहता है।

(८) आध्यात्मिक दृष्टिकोण का अभाव—इस युग ने ऐसे सिद्धान्त को अभी तक नहीं अपनाया है, जिसके अनुसार मानव से मानव प्रेम कर सके, पृथकता के बन्धन तोड़कर, विश्व-कुटुम्बकम् की भावना को अपना सके। प्राचीन जीवन तथ्यों, जिन्हें वैज्ञानिक प्रगति ने निर्मूल कर डाला है, के स्थान पर, नये मूल्यों का संस्थापन नहीं हो सका है।

भारतीय समाज में सामुदायिक तनाव

उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त हमारे राष्ट्रीय जीवन में प्रतिदिन सम्प्रदाय, जाति, भाषा और प्रान्तीयता को लेकर आये दिन उपद्रव हुआ करते हैं। स्वतंत्रता के बाद उनका वेग बहुत तीव्र हुआ, क्योंकि राष्ट्र के सम्मुख कोई ऐसा लक्ष्य नहीं था जो सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में बांध सके। भाषा और प्रान्तीयता के नाम पर देश के विभाजन की मांग विकराल रूप धारण कर बैठी। साम्प्रदायिकता के नाम पर भारत पाकिस्तान का विभाजन पहले ही हो चुका था परन्तु देश में बढ़ते हुए अनैक्य (Disunity) को देखकर के कर्णधार सजग हो गये और उन्होंने भावनात्मक एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। देश के राजनीतिज्ञों, समाज सुधारकों, शिक्षाविदों एवं वैज्ञानिकों आदि का एक

अधिवेशन बुलाया गया, जिसमें वर्तमान अनैक्य पूर्ण स्थिति का मूल्यांकन किया गया तथा राष्ट्रीय भावनात्मक एकता के कुछ सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये। हम इस विषय पर आगे विस्तृत प्रकाश डालेंगे। तत्काल हम उन कारणों पर प्रकाश डालेंगे, जो सामुदायिक तनाव का कारण बनकर देश के नव-जीवन में विष घोल रहे हैं।

जातिप्रथा और जतीयतावाद

जातिप्रथा—भारत वर्ष एक ऐसा देश है जिसमें अनेक प्रकार की जाति, रंग और धर्म के लोग पाये जाते हैं। भौगोल्कि स्थिति भी ऐसी है कि पूरे देश की भौतिक रचना और जलवायु में समानता नहीं पाई जाती। हट्टन महोदय का मत है कि लोगों की भिन्नता और भौगोलिक परि-स्थितियों ने कुछ ऐसे विशिष्ट समुदायों को जन्म दिया जो आगे चलकर जाति में परिर्वातित हो गई। जाति प्रथा समाज की स्थिरता और सुव्य-वस्था बनाये रखने में सहायक सिद्ध हुई, यह एक ऐतिहासिक सत्य है।

जाति व्यवस्था का उदय अनेक कारणों की जटिलता से हुआ है, किसी एक विशेष कारण से नहीं। परन्तु यह बात आश्चर्यजनक है कि जाति प्रथा भारतवर्ष के अतिरिक्त इस रूप में और कहीं नहीं पाई जाती। रिज़ले ने जाति की परिभाषा देते हुए कहा है कि जाति वह परिवारों का समूह है, जिसका एक विशिष्ट नाम होता है उनका सम्बन्ध किसी पौराणिक मानवीय अथवा दैवी वंशज से होता है। इस संगठन में एकरूपता पाई जाती है। श्री कक्कड़ ने जाति व्यवस्था की दो विशेषतायें बताई हैं—(१) जाति की सदस्यता केवल उस जाति में पैदा होने वालों को ही प्राप्त होती है। (२) कोई भी सदस्य दूसरी जाति के साथ वैवाहिक सम्बन्ध नहीं कर सकता। श्री एन० के० दत्त ने जाति की विशेषतायें बताते हुए लिखा है कि एक जाति के लोग दूसरी जाति में विवाह नहीं कर सकते। खान-पान के ढंग कठोर होते हैं। उनका कोई निर्धारित व्यवसाय होता है। जातियों में ऊँच नीच का स्तर होता है। प्रत्येक व्यक्ति जन्मजात

किसी जाति का सदस्य होता है और उस समय तक मुक्त नहीं होता जब तक वहिष्कृत न कर दिया जाय। प्रत्येक जाति, ब्राह्मण जाति की तुलना में ही अपने को उच्च या निम्न स्तर का समझती है। जाति प्रथा के कारण भारतवर्ष वहुवादी समाज (Plural Society) की श्रेणी में आता है। हट्टन ने जातियों की उत्पत्ति के निम्न मुख्य कारण बतलाये हैं—

(१) भारतीय प्रायद्वीप की भौगोलिक पृथकता (२) जादू टोना और अपवित्रता के विचार (३) पैतृक व्यवसाय और आर्थिक समुदाय (४) विभिन्न विरोधी संस्कृतियों का द्वन्द्व (५) रंग के आधार पर जातियों का द्वन्द्व तथा धार्मिक विचार।

जातिप्रथा की उत्पत्ति भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक आदि कारणों के अन्तरसम्बन्ध से हुई है।

जातिप्रथा से हानियाँ—जातिप्रथा विचार वर्ग का भ्रष्ट रूप है। यद्यपि इस व्यवस्था ने भारतीय समाज को काफी सुदृढ़ रक्खा है, परन्तु वेलोच होने के कारण अब यह प्रथा भारतीय समाज की एकरूपता में बाधा उपस्थित कर रही है। श्री जेम्स कर्र, प्रिन्सपल हिन्दू कालेज, कलकत्ता का विचार था कि जाति प्रथा अंग्रेजी साम्राज्य के हित में है क्योंकि इसकी भावना राष्ट्रीय एकता के विरुद्ध है। कहा जाता है कि जातिवादी के लिए देश प्रेम जाति से प्रेम है और कभी कभी जाति प्रेम—राष्ट्रीयता से भी अधिक महत्त्वपूर्ण मान लिया जाता है। सारे देश की उन्नति का ध्यान न रखकर केवल अपनी जातीय उन्नति की योजना बनाई जाती है।

जाति व्यवस्था कर्म संस्कार पर आधारित है। अच्छा कर्म करने वाला ऊँची जाति में और खराब कर्म करने वाला नीची जाति में है। इस धार्मिक विश्वास के कारण लोग भाग्यवादी हो जाते हैं। फलस्वरूप सामाजिक एवं आर्थिक असमानता को सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। इस मनोवृत्ति के कारण नीची जाति वालों का शोषण होता है और जान बूझ

कर उन्हें पिछड़ेपन की अवस्था में रक्खा जा जाता है। उन्हें खुलकर जीने का अवसर भी नहीं दिया जाता। अनेक प्रकार के असामाजिक व्यवहारों को जाति व्यवस्था के आधार पर उचित ठहराया जाता है। छुआछूत जो जातिप्रथा का ही एक अनिवार्य परिणाम है जिसके अनगिनत दोष हैं। छुआछूत और जातिवाद दोनों ही अमानवीय और अप्रजातांत्रिक तत्व हैं। छुआछूत को मिटाने में सरकारी नियम, आर्य समाज और गान्धी जी के आन्दोलन काफी सहायक रहे हैं।

जातीयता—जातीयता जातिवाद पर आधारित एक भाव है, जो जाति के सदस्यों में पाया जाता है। एक जाति वाले इस भाव के अधीन अपने में सामाजिक निकटता का अनुभव करते हैं, एक दूसरे पर विश्वास करते हैं। अन्य जातियों से पृथक कर सामाजिक अन्तर-प्रतिक्रिया को अपने जाति के हित में ही प्रयोग करते हैं। सामुदायिक एकता और पारस्परिक भ्रातृभाव बनाये रखने में जातीयता का भाव सहायक होता है, परन्तु इसका दूसरा पक्ष सामाजिक वैमनस्य और अन्याय को बढ़ावा देता है।

जातीयता का भाव रखने वाले अपनी जाति के खराब से खराब कार्य को श्रेष्ठ समझते हैं। उतः अपनी श्रेष्ठता और संगठन के आधार पर दूसरी जाति वालों से घृणा और वैमनस्य रखते हैं। जाति-वाद के दोष राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्रों में अत्यन्त ध्वंसकारी है।

आजकल भारतवर्ष में जिस स्तर पर भी चुनाव होते हैं; वे अन्त में जातीयता के स्तर पर उतर आते हैं। चूंकि जातीयता के भाव को जगा-कर समर्थन प्राप्त करना सरल होता है, इस लिए अदूर-दर्शी राजनैतिक कार्यकर्ता भी इसी को प्रोत्साहन देते हैं। जातीयता के आधार पर चुनाव लड़ना प्रजातांत्रिक भावना के विरुद्ध है। इसके कारण सामुदायिक तनाव बढ़ कर आक्रामक स्तर तक पहुँच जाता है। द्वितीय साधारण निर्वाचन में ऐसे उदाहरण भी देखने में आये जहाँ राजनैतिक दलों ने,

कांग्रेसी ब्राह्मण, कम्युनिस्ट क्षत्री अथवा समाजवादी यादव आदि नारों पर अपनी जाति वालों से वोट माँगा। इस आधार पर चुने जाने वाले जनता के प्रतिनिधि अपनी जाति वालों का ही भला सोचते हैं, जिसके कारण दूसरी जाति वालों को ईर्ष्या होती है और द्वन्द्व बढ़ जाता है।

यह कहना सत्य से दूर न होगा कि जातिवाद सरकारी प्रशासनिक यंत्र में भी प्रविष्ट हो चुका है। अधिकारियों और कर्मचारियों की पदोन्नति जाति के आधार पर की जाने की बातें सुनी जाती हैं। किसी जाति का उच्चपद पर नियुक्त अधिकारी अपनी जाति वालों को अनुचित सुविधा भी दे सकता है। आधिक असुरक्षा भाव के कारण प्रशासन में जातिवाद को बहुत बढ़ा चढ़ा कर देखा जाता होगा परन्तु कुछ अंश तक इसका प्रभाव उसमें अवश्य ही प्रतीत होता है।

जातिवाद के पीछे सामाजिक प्रतिष्ठा और मान का भाव भी छुपा रहता है। जब किसी जाति का व्यक्ति उन्नति के शिखर पर पहुँच जाता है, तो उस जाति वाले अनाथास ही उसे जातीय सम्मान का प्रतीक मानते हैं और किसी न किसी रूप ने अपना सम्बन्धी स्वीकार करते हैं। यदि कोई सम्बन्ध न स्थापित हो सका तो उसे अपनी जाति का ही व्यक्ति मानकर अपने को गौरवान्वि समझते हैं। इस मनोवृत्ति के कारण अन्य जाति समुदाय अपने को हीन समझते हैं और द्वेष के कारण उन्नति प्राप्त जाति को नीचा दिखाने के प्रयत्न में रहते हैं।

इन सब से प्रबल जातिवाद का आर्थिक पक्ष है। आर्थिक हितों की रक्षा के लिए लोग जातिवाद के आधार पर अपने को संगठित कर लेते हैं। जैसे अपनी ही जाति वाले अयोग्य व्यक्ति को नौकरी देना तथा दूसरी जाति के योग्य से योग्य व्यक्ति को छाँट देना। व्यापारिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए जातिवाद की दुहाई दी जाती है एक जाति वाले अपनी ही जाति के सदस्य की दूकान से सामान लेना और देना चाहेंगे।

कहा जाता है कि भारतवर्ष में जातिप्रथा का ह्रास हो रहा है

परन्तु जातिवाद की वृद्धि हो रही है। यदि विचार किया जाय तो यह कथन सत्य है परन्तु जातिवाद का सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, व्यापारिक एवं शिक्षण संस्थाओं तक में प्रवेश हो चुका है। इस तत्व के पीछे कुछ सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक कारण निहित होंगे, जिनमें निम्नलिखित अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं :—

(१) असुरक्षा-भाव—आधुनिक युग में आर्थिक एवं सामाजिक असुरक्षा का भाव इतना बढ़ गया है कि हर व्यक्ति अपनी स्थिति के बारे में अनिश्चित और भयभीत रहता है। दृढ़ता स्थापित करने के लिए राजनैतिक एवं प्रशासनिक यंत्र पर अधिकार जमाना आवश्यक है, इसी कारण जातिवाद हमारे देश में राजनैतिक आर्थिक महत्त्व प्राप्त कर चुका है।

(२) सामाजिक अलगाव (Social Isolation)—आधुनिक औद्योगिक जीवन यंत्र के समान नीरस और उदास हो चुका है। भीड़ में भी व्यक्ति अपने को अकेला पाता है। आधुनिक व्यापारिक नगरों में व्यक्ति का जीवन सामाजिक अलगाव में गुजरता है। प्रातःकाल से साँय काल तक वह यंत्र की तरह काम करता है, शाम को किसी छवि-गृह में जा बैठता है परन्तु वहाँ भी जिस व्यक्ति से कन्धे से कन्धा मिला कर बैठता है उससे भी अपरिचित रहता है। ऐसी जीवन-शैली की प्रतिक्रिया आवश्यक है। भारतमें ही नहीं जर्मनी में भी यह नारा बुलन्द किया गया था "समुदाय को वापस चलो (Back to Community) ऐसी ही प्रतिक्रिया हमारे देश पर इस समय छाई हुई है। जातीयता के आधार पर संगठित होकर हम अपने को एक ठोस संगठित सामाजिक इकाई का सदस्य पाते हैं। भारतवर्ष में लोकतंत्रीय शिक्षा का अभाव है उसके विकास के साथ साथ जातिवाद की भावना का ह्रास हो जायगा।

साम्प्रदायिकता—संघर्ष और सहयोग, सामाजिक प्रक्रिया के दो

रूप हैं। सम्प्रदायवाद सहयोग प्रक्रिया पर आधारित होता है और दूसरे सम्प्रदाय या सम्प्रदायों से पृथक रहता है। साम्प्रदायिक समुदाय इस मिथ्या धारण से प्रेरित होता है कि सामाजिक संघर्ष एवं मतभेदों को बिल्कुल मिटाया जा सकता है। मनुष्य अपने सम्प्रदाय में बिना किसी मतभेद के रह सकता है। यहाँ तक कि सम्प्रदायवादी संगठन आर्थिक स्पर्धा को भी निर्मूल कर देना चाहते हैं। यह संगठन कोरे आदर्शवाद (Utopain) पर आधारित होता है। साम्प्रदायिक नेता यह मानते हैं कि उनका सम्प्रदाय दूसरों से श्रेष्ठ है। कभी धर्म, कभी नस्ल (Biological) और कभी बुद्धि को श्रेष्ठता का आधार बताया जाता है। जर्मन के नाजी अपने को संसार की सर्वश्रेष्ठ नस्ल मानते हैं और यह विश्वास करते हैं कि उन्हें संसार पर शासन करने का जन्मजात अधिकार है। इसी प्रकार गोरी जाति वाले अपने को बुद्धि में श्रेष्ठ मानकर असभ्य जातियों को सभ्य बनाने का स्वयं को ठेकेदार समझते हैं। इस्लाम धर्म अपने को श्रेष्ठ समझ कर तलवार के बल पर फैलना चाहता था। अतः प्रत्येक सम्प्रदाय में कोई न कोई कोरा आदर्श-वाद अन्तर्निहत रहता है, जिसके आधार पर वह स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ और पृथक मानता है। जब किसी समाज में ऐसे सम्प्रदाय एक से अधिक पाये जाते हैं, तो उनमें तनाव बना रहता है।

प्रत्येक सम्प्रदाय की संस्कृति और सभ्यता दूसरे से भिन्न होती। सामाजिक आदान प्रदान का नियम, बोलचाल, रीति-रिवाज आदि भी दूसरे समाज से भिन्न होते हैं। इस भिन्नता के कारण एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय की संस्कृति को नीची दृष्टि से देखता है, उसमें त्रुटियाँ निकालता है तथा उन्हें अपवित्र समझता है। विभिन्न प्रकार की मनगढ़न्त बातें कही और सुनी जाती हैं। धार्मिक विश्वास और पूजा करने का ढंग एक दूसरे से भिन्न होता है।

साम्प्रदायिक तनाव के मनोवैज्ञानिक कारण लगभग वही होते हैं

जिन्हें हम सामुदायिक तनाव के अन्तर्गत बता चुके हैं। यहां यह बता देना उचित होगा कि सम्प्रदायों में सर्वदा तनाव ही नहीं पाया जाता बल्कि सहयोग और भाईचारा, भी पाया जाता है। हमारे देश में अगर एक ओर हिन्दू मुसलमान सम्प्रदायों ने एक दूसरे के रक्त से होली खेली है तो ऐसे भी उदाहरण कम नहीं जहाँ एक सम्प्रदाय वालों ने दूसरे सम्प्रदाय वाले व्यक्ति के प्राण और सम्मान की रक्षा के लिए अपने जीवन को उत्सर्ग कर दिया है।

भारतवर्ष में अनेक धार्मिक सम्प्रदाय पाये जाते हैं, जिनमें हिन्दू, मुसलमान, सिख आदि विशेष महत्वपूर्ण हैं। इनमें हिन्दू और मुस्लिम सम्प्रदायों में तनाव इतना बढ़ गया गया था कि सन् १९४६ से ४८ तक देश के विभिन्न कोनों में साम्प्रदायिक दंगे होते रहे हैं। दो राष्ट्रों के साम्प्रदायिक सिद्धान्त पर ही देश का बँटवारा सम्पन्न हुआ। यूँ तो साम्प्रदयिकता के अनेक ऐतिहासिक कारण हैं, परन्तु उनमें राजनैतिक और आर्थिक स्वार्थ महत्वपूर्ण हैं। अंग्रेजी सरकार ने इन दोनों बड़े सम्प्रदायों को आपस में लड़ा कर राष्ट्रीय एकता नहीं स्थापित होने दिया। साम्प्रदायिक तनाव के राजनैतिक और ऐतिहासिक कारणों पर प्रकाश डालना हमारा विषय नहीं है। मनोविज्ञान के छात्र के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि धार्मिक और सांस्कृतिक मतभेद एवं राजनैतिक स्वार्थ साम्प्रदायिक तनाव के कारण हुआ करते हैं।

भाषा और भाषावाद

जिन ध्वनि चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार विनिमय करता है, उनको समष्टि रूप से भाषा कहते हैं। भाषा की ध्वनियाँ सार्थक होते हुए भाव और इच्छा भी रखती हैं। किसी विशेष जन समुदाय के द्वारा प्रयुक्त उच्चारणोपयोगी अवयवों से उच्चरित सार्थक ध्वनि-संकेतों को भाषा कहते हैं। यह ध्वनियाँ किसी विशेष जनसमुदाय के द्वारा अपनायी जाती हैं। भाषा द्वारा विचार तथा भावनाओं का पारस्परिक आदान

प्रदान किया जाता है। भाषा एक ऐसी अविच्छिन्न एवं सतत प्रवाहिनी धारा है, जो स्थायी और नित्य होती है। भाषा के इस प्रकार की स्थायी संस्था होने का कारण यही है कि वह समाज सापेक्ष्य है। एक सामाजिक संस्था होने तथा पारस्परिक विचाराभिव्यक्ति का माध्यम होने के कारण भाषा का पारस्परिक सामाजिक सम्बन्ध बनाये रखना आवश्यक है। किसी क्षेत्र की भाषा उस क्षेत्रीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। जिस प्रकार प्राकृतिक दशायें और जलवायु वहाँ के लोगों को प्रभावित करती हैं, उसी प्रकार भाषा का प्रभाव भी रहता है। यही कारण है कि भाषा के सम्बन्ध में संवेगोत्तेजक होकर प्रतिक्रिया करता है।

व्यक्तित्व के विकास में भाषा का एक महत्वपूर्ण स्थान है। लिखने और बोलने की भाषा केवल सम्पर्क द्वारा सीखी जाती है—अर्थात् उनसे सीखी जाती है जो भाषा को जानते हैं। भाषा और संस्कृति का घनिष्ठ सवन्ध है। किसी राष्ट्रीय इकाई का धर्म, व्यवहार, विश्वस, जीवन मूल्य सामजिक एवं आर्थिक मान्यताएँ भाषा के द्वारा ही व्यक्त होती हैं। अतः भाषा संस्कृत की आत्मा है। मानव का भाषा से उतना ही गहरा सवन्ध होता है, जितना अपनी मां से। एक भाषा के बोलने वाले चाहे जिस धर्म और जाति के हों एक दूसरे के सम्पर्क में सरलता से आ जाते हैं। अतः मातृ-भाषा पर आघात, मूल अधिकारों पर आघात के समान होता है। इसी संवेग से प्रेरित होकर भारतवर्ष भाषा से सम्वन्धी उपद्रव हुए।

भारतवर्ष में लगभग २७ भाषायें बोली जाती हैं। संविधान द्वारा निम्न क्षेत्रीय भाषायें मान्य हैं :—हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, बंगला, असमिया, उड़िया, कश्मीरी, गुजराती, मराठी तथा तमिल, तेलगू, कन्नड़ और मलयालम। इन भाषाओं का अपना एक भौगोलिक क्षेत्र है, जिनमें ये बोली जाती हैं। इन भाषाओं के साथ साथ इन क्षेत्रों की विशिष्ट संस्कृति भी हैं! बंगाली, पंजाबी, और मद्रासी की वेश-भूषा, रीतिरिवाज खान-पान आदि में बिल्कुल भिन्नता पाई जाती है। स्वतन्त्रता के बाद

भाषा के आधार पर राज्य-पुनर्गठन की माँग देशभर में उठाई गई। सर्वप्रथम आन्ध्रप्रदेश के निर्माण के लिए रामूलू ने आमरण अनशन कर प्राणों की आहुति दी, तत्पश्चात् बम्बई राज्य में गुजराती और मराठी क्षेत्रीय भाषाओं को लेकर भी दंगे हुए। अन्ततः उसे भी गुजरात और महाराष्ट्र में विभाजित करना पड़ा। १९६१ में बंगला भाषा को लेकर असम में बड़े दंगे हुए।

इन भाषा सम्बन्धी दंगों के अतिरिक्त नागाओं ने नागालैण्ड और अकालियों ने पंजी सूबे की अलग माँग की। ऐसा प्रतीत होने लगा कि सारा देश छिन्न-भिन्न हो जायगा। भारत वर्ष के बारे में प्रो० ट्वायम्बी (Prof. Toyambee) के शब्दों में भारतवर्ष में भाषायी राष्ट्रीयता (Linguistic Nationalism) जागृति हो गयी। अतः राष्ट्रीय भावनात्मक एकता कार्य-क्रम में त्रिभाषा सिद्धान्त को अपनाया गया है, जिसके अनुसार प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त एक भारतीय क्षेत्रीय भाषा एक विदेशी भाषा पढ़नी चाहिए।

भाषा सन्बन्धी दंगे और प्रान्तीयता का मनोवैज्ञानिक आधार वही है, जो सामुदायिक तनाव और जातीयता में पाया जाता है। भाषा सम्बन्धी तनाव आर्थिक असुरक्षा के भय से और भी बढ़ जाता है। यदि एक भाषा भाषियों को यह विश्वास हो जाय की उस भाषा के जानने वालों को प्रशासन में स्थान नही मिलेगा या उनका आर्थिक शोषण किया जाएगा तो उत्तेजित होकर तनाव का व्यवहार करने लगेंगे। स्वार्थ सिद्धि के लिए राजनैनिक नेता इस आग को और भड़का देते हैं। गतवर्ष असम के दंगों में यह दोनों कारण विद्यमान थे।

अध्याय
: ८ :
प्रचार
Propaganda

आधुनिक युग में हम सर्वदा प्रचार के बौछार में रहते हैं। व्यापार से लेकर राजनीति, समाज-सुधार एवं धार्मिक विचारों के प्रसार तक में प्रचारात्मक कौशल का प्रयोग किया जाता है। इतिहास साक्षी है कि समय समय पर राजाओं और धार्मिक गुरुओं ने प्रचार का सहारा लिया है। अशोक महान ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए विदेशों में सद्भावना मंडल भेजा और मुख्य स्थानों पर शिलालेख खुदवाया। महारानी-एलिजाबेथ, नैपोलियन और बिस्मार्क ने अपने विचारों को जनता तक पहुँचाने के लिए इन्हीं कौशलों का प्रयोग किया। परन्तु प्रथम विश्व-महायुद्ध के बाद प्रचार जनमत को प्रभावित करने का एक विशेष और प्रभावशाली साधन मान लिया गया है। प्रचार के दो पहलू होते हैं - एक तो वह जो प्रत्यक्ष होता है दूसरा जिसका ध्येय छिपा होता है। इसी कारण प्रचार धोखा देने का एक साधन समझा जाता है। के०-एफ० जिराल्ड ने उचित ही कहा है कि 'प्रचार एक अच्छा शब्द हैं, परन्तु उसका अर्थ दोषपूर्ण लगाया जाता है। (Propaganda is a good word gone wrong)

प्रोपेगेन्डा (प्रचार) लैटिन के शब्द Propagair से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है उत्पन्न करना या प्रसार करना। प्रोपेगेण्डा शब्द का वास्तविक अर्थ है, प्रसार या उत्पत्ति के लिए सचेत प्रयत्न करना।

आधुनिक युग में प्रसार से हमारा अभिप्राय उस कौशल से है, जिसके द्वारा लोगों के विचार, विश्वास अथवा मनोवृत्ति को परिवर्तित करके कार्यान्वित किया जाय। यह सामाजिक नियंत्रण का वह साधन है जो शारीरिक बल प्रयोग एवं अहिंसात्मक साधन से भिन्न है।

'प्रचार' शब्द को दो अर्थों में प्रयोग किया गया है। लगभग सन् १९२० से लेकर सन् १९३५ तक कुछ लेखक प्रचार से ऐसे प्रतीकों का प्रयोग समझते थे, जिसका वास्तविक उद्देश्य अप्रकट रहता था। इसी कारण यह भ्रम उत्पन्न हो गया कि हर प्रकार का प्रचार बुरा है। परन्तु दूसरे वे लोग थे, जो प्रचार में उन सभी साधनों को निहित समझते हैं, जिनके द्वारा किसी भी राजनैतिक' शैक्षिक' व्यापारिक अथवा धार्मिक आदर्श का प्रसार होता है। इस प्रकार का प्रचार निषेधात्मक न हो कर वर्णन और व्याख्या का उपयोगी माध्यम हो जाता है।

किम्बलयांग ने प्रचार की परिभाषा इस प्रकार की है "प्रचार वह सचेत, नियोजित एवं व्यवस्थित प्रतीकों का प्रयोग है, जिसके द्वारा निर्देशन और उससे सम्बन्धित मनोवैज्ञानिक कौशल से विचारों, मतों और मूल्यों को इस उद्देश्य से परिवर्तित किया जाता है कि वे पूर्व-निश्चित मार्ग पर कार्यान्वित हो सकें।" प्रचार कार्य किसी सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में होता है। बिना इस पृष्ठभूमि को समझे सफल प्रचार के लिए मनोवैज्ञानिक प्रयत्न नहीं किए जा सकते। प्रचार दो प्रकार का होता है। (१) खुला (Open) प्रचार जिसका उद्देश्य प्रकट हो। (२) मायावी प्रचार (Concealed Propaganda) जिसका उद्देश्य छिपा हुआ हो। आधुनिक युग में राजकीय एवं व्यापारिक संस्थायें या अन्य सामुदायिक संस्थायें अपने हितों की पूर्ति के लिए प्रचार का प्रयोग करते हैं। प्रचार की सफलता के लिए जहाँ प्रचार करना है उस क्षेत्र का इतिहास, भूगोल और साहित्य का ज्ञान आवश्यक है।

प्रचार-मनोविज्ञान—प्रचार का प्रधान मनोवैज्ञानिक तथ्य निर्देशन

है। प्रचार व्याख्या करने पर निम्न तथ्य प्रकट होते हैं :—

(१) प्रचार का उद्देश्य—जिनके मध्य प्रचार किया जाता है, उनकी विशेषताओं को ध्यान में रखकर उद्देश्य निर्धारित किया जाता है।

(२) प्रचार की सामग्री या प्रतीक—प्रचार करने की सामग्री में ऐसी चीजें आती हैं जैसे कहानी या घटना का वर्णन, वस्तु की प्रशंसा लोगों की राय इत्यादि।

(३) प्रचार को सफल बनाने के लिए मनोवैज्ञानिक कौशल।

(४) प्रचार की निरन्तरता—लोग अपने दिनचर्या में इतने व्यस्त रहते हैं कि जब तक बार-बार प्रचार न किया जाय तब तक उनके विचार प्रवृत्ति और व्यवहारों पर प्रभाव नहीं पड़ता।

इन बातों के अतिरिक्त, जिनमें प्रचार करना है उनकी अभिरुचि, प्रचारित सामग्री के लिए जानना आवश्यक है। प्रचार ऐसा होना चाहिए जो मानव जीवन की मूल प्रेरणाओं को प्रभावित करें। ये मूलप्रेरणायें सफलता, प्रेम, क्रोध भय और आशा आदि के प्रभाव से जाग्रत होती हैं।

इच्छा या प्रेरणा के जाग्रत होते ही प्रचारक उनको सन्तुष्ट करने की योजना प्रस्तुत करता है। किसी वस्तु का प्रयोग करने अथवा किसी विचार को अपनाने की अपील करता है। राजनैतिक प्रचारक क्रान्ति करने या अपने पक्ष में वोट लेने के लिए जनमत तैयार करते हैं।

प्रचार के कौशल (Techniques of the Propaganda)—प्रचार की सफलता के लिए एक प्रचार संस्था ने निम्नलिखित तकनीक बताये हैं :—

(१) अपशब्द-उपयोग (Name Calling)—अपशब्द उपयोग द्वारा प्रचारक अपने विपक्षी की बुराइयों का वर्णन करता है। इस तकनीक के मुख्य उद्देश्य जनता की मनोवृत्ति अपने पक्ष में कर लेने की है।

आजकल राजनैतिक क्षेत्र में ऐसा प्रचार खूब प्रचलित है। एक राजनैतिक दल दूसरे दल पर कीचड़ उछाल कर अपने पक्ष में समर्थन प्राप्त करना चाहता है।

(२) ज्वलन्त सामान्यता (Glittering Generality)—प्रचारक कुछ ऐसे शब्दों और उदाहरणों का प्रयोग करता है जिनसे जनता के संवेग जाग उठते हैं। क्रोध, भय, प्रेम, घृणा इत्यादि की भावानयें प्रबल हो जाती हैं। अन्ध विश्वास और पूर्वाग्रह भी जाग उठते है।

जन साधारण-मर्म-स्पर्शिता—साधारण जन बड़े सीधे सादे और अनभिज्ञ होते हैं। इसी कारण वे सरलता से प्रभावित किए जा सकते हैं। पाप का धार्मिक भय, देवी देवता का प्रकोप, जातीयता, स्थानीयता इत्यादि के भाव जगाकर उन्हें तुरन्त प्रभावित किया जा सकता है।

(४) योग्यता-प्रमाण पत्र—साधारण मानव की यह प्रवृत्ति होती हैं कि वह अपने से श्रेष्ठ व्यक्ति की बातों पर सरलता से विश्वास कर लेते हैं। इसे प्रतिष्ठा संसूचन (Prestige Suggestion) कहते हैं। आधुनिक युग में विशेषज्ञ के प्रमाण-पत्र का विशेष महत्त्व है।

(५) विजय ढिंढोरा—इस कौशल के द्वारा प्रचारक अपनी सफलता का प्रचार सर्वत्र करता है ताकि उसको अपने पक्ष में समर्थन प्राप्त हो सके।

(६) मिथ्या तथ्य (Card Stacking)— इस कौशल द्वारा भी जनता को छलने का प्रयत्न किया जाता है। किसी न किसी प्रकार सत्य अथवा असत्य प्रमाणों से अपने पक्ष में समर्थन प्राप्त किया जाता है।

(७) स्थानान्तरण (Transfer)— इसके द्वारा भी जनता को छलने का प्रयत्न किया जाता है। किसी अन्य सन्दर्भ में कही गई बात को अपने तात्कालिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत किया जाता है।

प्रचार का एक व्यापक कौशल भाव और संवेगों को उत्तेजित करना तथा सभ्यता के अनुरूप प्रतिमाओं को उत्पन्न करना है। विशेषज्ञ की बातों का विशेष प्रभाव पड़ता है। जैसे किसी दवा के प्रचार में किसी प्रतिष्ठित चिकित्सक की राय का विशेष महत्व होगा। विशेष अवस्थाओं में प्रचार के विभिन्न कौशल अपनाये जाते हैं। परन्तु निम्न सामान्य बातों पर ध्यान देना आवश्यक है :—

(१) प्रचार ऐसा होना चाहिए जो जनता की मूल इच्छाओं और उद्देश्यों को जगा कर उसकी स्वीकृति प्राप्त कर सके।

(२) प्रचार को प्रतीकों द्वारा संवेगोत्तेजक होना चाहिए तथा सन्तोष एवं उद्देश्य प्रदान करने वाला होना चाहिए।

(३) प्रचार की सामग्री ऐसी सरल होनी चाहिए जो आसानी से जन-साधारण में घुल मिल जाय।

(४) प्रचार का अप्रत्यक्ष की अपेक्षा प्रत्यक्ष होना ही उचित होता है।

(५) प्रचार के कुछ तथ्यों को वार वार दुहराना आवश्यक है ताकि इच्छायें और भावनायें जग सकें।

(६) जब प्रचार द्वारा जनता की अभिरुचि जागृत हो जाय तो वर्णन द्वारा प्रचारित वस्तु की प्रशंसा, दूसरों की बुराई, आश्चर्यजनक तथ्य अथवा कोरा झूठ बोला जाता है।

(७) सीमित प्रचार तो किसी वर्ग विशेष के लोगों में किया जाता है परन्तु विस्तृत प्रचार बालकों और युवकों पर करना चाहिए क्योंकि यह लोग प्रचार को शीघ्र ग्रहण करते हैं।

(८) तत्कालीन मनोवृत्ति, मूल्य एवं उद्देश्य से संलग्न प्रचार अधिक सफल होता है।

प्रचार के साधन

आधुनिक वैज्ञानिक एवं तकनीकी उन्नति के कारण विचारों का उत्पादन भी अधिक से अधिक मात्रा में होता है। उनका

प्रसार शीघ्रता से बहुत दूर दूर तक किया जा सकता है। निम्न साधन प्रचार में सहायक होते हैं :—

(१) समाचार-पत्र—समाचार-पत्र एक विशेष प्रकार का प्रचार साधन है। वह हर प्रकार के लोगों को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करता है। व्यापारी, राजनैतिक एवं उत्तेजना-प्रिय पाठक अपनी अपनी रुचि की वस्तुयें उसमें ढूंढ़ते हैं। समाचार-पत्रों के सम्पादकीय लेखों का विशेष प्रचारात्मक महत्व है। प्रत्येक समाचार-पत्र अपनी नीति के अनुसार अपने विचारों का प्रतिपादन करता है। कुछ सनसनीखेज पत्रों को पीले पत्र (Yellow Press) कहते हैं। ये धुआँधार प्रचार कर सकते हैं।

(२) रेडियो (Radio) आधुनिक युग में रेडियो, प्रचार का सबसे महत्त्व-पूर्ण साधन है कुछ देशों में रेडियो व्यापार पर सरकार का अधिकार होता है जब कि कुछ देशों में उनका संचालन निजी क्षेत्रों के द्वारा होता है। इसी के द्वारा सरकार अपनी नीति और कार्यक्रम का प्रसार करती है। रेडियो की विशेषता यह होती है कि प्रचार वस्तु केवल कानों से सुनी जा सकती हैं। आँखो से देखे बिना ही श्रोता सामग्री की व्याख्या करता है। रेडियो शीघ्रातिशीघ्र प्रचारात्मक सामग्री को सारे विश्व में फैला सकता है और तुरन्त प्रति-प्रचार कर सकता है।

(३) चलचित्र (Cinema) आधुनिक युग में, जन जीवन में, जितना महत्व चल चित्रों का है उतना किसी भी माध्यम का नहीं है। चल-चित्र विभिन्न रूप से प्रचार के साधन हो सकते हैं। इनके द्वारा प्रचारित सामग्री विभिन्न वर्गों के दर्शको पर विभिन्न रूप से प्रभाव डालती हैं। आजकल डाकुमेंटरी और विज्ञापन सम्बन्धी चल-चित्रों की भरमार है।

(४) कानाफूसी (Whisper Compaign)—कानाफूसी के द्वारा प्रचार धीरे-धीरे आग की तरह फैल जाता है। साधारण जनता

उस पर अधिक विश्वास करती है जब कि समझदार लोग उस पर विशेष ध्यान नहीं देते।

(५) सभा (Meetin s)—अपने विचारों को प्रकट करने का नागरिक अधिकार प्रायः सभी देशों ने दे रक्खा है। राजनीतिज्ञ, समाज-सुधारक एवं धर्म प्रचारक, लोगों को सभा बुलाकर अपने मत का प्रचार करते हैं। प्रजातंत्र में सभाओ का विशेष महत्त्व है। ध्वनि-विस्तारक यंत्र की सहायता से बड़ी सभाओं का सफल आयोजन किया जा सकता है।

(६) पोस्टर और प्रचार साहित्य—चित्रों को मुख्य-मुख्य स्थानों पर टांग कर प्रचार किया जाता है। जैसे नशाबन्दी के सम्बन्ध में ऐसे चित्र मिलेंगे जो नशे की हानियाँ प्रदर्शित करते हैं। पैम्फलेटों और नोटिसों द्वारा प्रचार सामग्री को रुचिकर बनाकर प्रस्तुत किया जाता है।

इन साधनों के अतिरिक्ष टेलीविजन, परेड, सत्याग्रह' जुलूस, प्रदर्शन, रंगमंच- तथा गाने वालों की टोलियों के द्वारा प्रचार किए जाते हैं।

दुष्प्रचार को रोकने के उपाय
(PROPAGANDA PROPHYLOXIS)

आधुनिक युग में प्रचार जादू की तरह फैलता है। देश-भक्ति की भावना, लड़ाई का जोश और व्यापारिक माल खरीदने प्रेरणा की बात की बात में, प्रचार द्वारा उत्पन्न हो जाती है। इतने शक्तिशाली साधन का दुरुपयोग भी होता है। समाज संकुचित हितों में इस प्रकार विभक्त है कि अपने अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए दूषित और घृणित प्रचार करने में भी वे समूह नहीं हिचकते। किसी सार्वजनिक समस्या पर भ्रामक प्रचार प्रारम्भ कर दिए जाते हैं। नागरिकों के गुट एक दूसरे पर कीचड उछालते हैं। वैमनस्य और गलतफहमी इस रूप में बढ़ जाती है कि वह हिंसात्मक रूप धारण कर लेती है। परन्तु प्रचार का वह रूप, जिसका

उद्देश्य जनता को वरगलाना होता है, बड़ा ही घृणित होता है। इसके द्वारा एक समुदाय के विरुद्ध उभाड़ा जाता है। साम्प्रदायिक दंगे बहुत दूषित प्रचार द्वारा ही सम्भव होते हैं। भारतवर्ष में जन-साधारण इतना पिछड़ा हुआ है कि बिना कार्य-कारण पर विचार किए हुए अन्ध-विश्वास का पलड़ा पकड़ लेता। दुष्प्रचार के द्वारा असुरक्षा, भय, घृणा, द्वेष मूल मानवीय प्रवृत्तियों को ठुकराया जा सकता है। ऐसी भावनाओं को जगाने वाला प्रचार बड़ा ही सफल होता है। उदाहरण है दंगे के समय इस प्रकार की अफवाहें उड़ाई जाती है कि किसी एक सम्प्रदाय ने दूसरे सम्प्रदाय को मारने के लिए बन्दूकें और हथगोले जमा कर रक्खे हैं। किसी विशेष स्थान पर हथियारों से लैस लोग जमा हैं अथवा कई घर फूंक दिये गये हैं। पता लगाने पर मालूम होता है कि वे हथगोले बच्चों द्वारा छोड़े गये पटाखे थे। वह जमावड़ा बारातियों का था और जलने को केवल कूड़ा करकट था। परन्तु ऐसे प्रचारों का सनसनीदार और भयोत्तेजक प्रभाव पड़ता है।

व्यापार के क्षेत्र में खराब से खराब माल को भी बेचने के लिए प्रचार का सहारा लिया जाता है। जनस्वास्थ्य के लिए हानिकर वस्तुएं भी व्यापक प्रचार के माध्यम से बेची जाती हैं।

दुष्प्रचार रोकने के लिए निम्न उपाय पूर्णतः सफल तो नहीं हो सकते परन्तु उसके प्रभाव को कुछ सीमा तक कम अवश्य कर सकते हैं :—

(१) हानिकारक प्रचार पर सरकार द्वारा प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए। ऐसा करनेवालों के विरुद्ध कानूनी कारवाई करनी चाहिए।

(२) जनता को न्यूनतम समाज-शिक्षा के सिद्धान्त समझाने चाहिए ताकि वे अपना हानि लाभ समझ सकें।

(३) दुष्प्रचार के प्रभाव को दूर करने लिए प्रति-प्रचार नियम का सहारा लेना चाहिए। इसके फलस्वरूप वास्तविकता प्रकट हो जाती है और भ्रम एवं आतंक दूर हो जाते हैं।

(४) असुरक्षा की भावना आधुनिक जन-जीवन को अस्थिर बनाने में विशेष योग देती है। अतः जनता की मूल आवश्यकतायें पूरी सन्तुष्ट होनी चाहिए ताकि वे उनकी सन्तुष्टि के लिए दुष्प्रचार की ओर न झुकें।

(५) व्यक्ति-सम्पर्क दुष्प्रचार को दूर करने के लिए जनता से समाज सुधारकों को सम्पर्क स्थापित करना चाहिए। भाषण, गोष्ठी और वाद-विवाद द्वारा वास्तविकता को प्रकट करना चाहिए। महात्मा गान्धी ने सन् १९४६-४८ के साम्प्रदायिक- दंगो में नोआखाली की यात्रा करके शान्ति और अंहिसा का प्रचार किया।

जैसा कि हम पहले प्रकट कर चुके हैं कि प्रचार कार्य किसी सामाजिक, सांस्कृतिक, पृष्ठभूमि में होता है। यदि जनता का बौद्धिक एवं सांस्कृतिक स्तर ऊँचा रहे तो प्रचार में जो मनोवैज्ञानिक हथकन्डे अपनाये जाते हैं, उनसे वह बच सकती हैं। दूषित प्रचार सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था की उपज है और उसके बदलते ही स्वयं निर्मूल हो जाएगा।

विज्ञापन
(ADVERTISING)

विज्ञापन खुला प्रचार है। इसका सम्बन्ध केवल व्यापार क्षेत्र से है, जब कि प्रचार जीवन के सभी क्षेत्रों से सम्बन्धित हो सकता है। विज्ञापन का उपयोग उत्पादन की बिक्री बढ़ाने के लिए किया जाता है। विज्ञापन आधुनिक व्यापार की माँ है। प्रचार संवेगात्मक प्रक्रिया होती है, लेकिन विज्ञापन सभी लोगों को संवेगोत्तेजित नहीं करता। विज्ञापन का मूल गुण चित्ताकर्षण (Appeal Theme) है। चित्ताकर्षण वह कौशल है, जिसके द्वारा ग्राहकों के मन में इच्छायें जगा कर, उन्हें वस्तुओं को क्रय करने के लिए प्रेरित किया जाता है। विज्ञापन के दिखावटी रूप से कहीं अधिक उसका चित्ताकर्षण पक्ष महत्त्वपूर्ण है। जिन

वस्तुओं को हम जानते पहचानते रहते हैं, उन्हें जल्द चुन लेते हैं। इस सत्य कोएक प्रयोग द्वारा सिद्ध किया गया है। कुछ व्यक्तियों को कागज पर छाप कर बहुत से नाम दे दिये गये जो तितर बितर थे। प्रत्येक नाम पाँच पर कहीं न कहीं आया था। उसमें उस व्यक्ति का भी नाम था जिसे पात्र बनाया गया। पात्र ने पाँच जगह अपने नाम के नीचे चिन्ह लगाने में ७२·६ सेकेण्ड लिए जब कि अन्य व्यक्ति के नाम के नीचे पाँच जगह चिह्न लगाने में १०३·७ सेकेण्ड लगे।

व्यापारी अपने माल के विक्रय-क्षेत्र और ग्राहकों के वर्ग को जानता है। अतः विज्ञापन द्वारा वह उन्हीं के चित्त को आकर्षित करता है। सम्भाव्य ग्राहकों का वर्गीकरण निम्न दो विधियों से किया जाता हैं :—

(१) सम्भाव्य ग्राहकों को उत्तेजित करने वाला चित्ताकर्षण, और (२) उस चित्ताकर्षण को उचित माध्यम द्वारा सम्भाव्य ग्राहकों तक पहुँचाना।

आधुनिक युग में समाचार पत्र, पत्रिकायें, रेडियो, टेलीविजन पत्र-व्यवहार, प्रदर्शन, इत्यादि माध्यमों का उपयोग किया जाता है। जिस व्यक्ति को अपने माल का विज्ञापन करना रहता है, वह अपने ग्राहकों की आयु, आय, एवं भौगोलिक स्थिति का पता लगाते हैं। विज्ञापन का तरीका यह है कि प्रत्येक विज्ञापन प्रसारित करने वाली संस्थायें अपने पास ऐसी सूचनायें रखती हैं, जिनसे उनके पाठक या उनके दर्शक का पूर्ण विवरण मिलता है। उन्हें देखकर विज्ञपन देने वाला अपने प्रचार का साधन चुन लेता है। जैसे यदि उसके माल के खरीदने वाले रेडियो प्रेमी है और उनका कोई विशेष भौगोलिक क्षेत्र भी है तो वह व्यापारी अपने माल के प्रचार के लिए उसी क्षेत्र के रेडियो को साधन बनाएगा। भारत में फिल्म सम्बन्धी बहुँत से विज्ञापन रेडियो सीलोन से प्रसारित होता है।

विज्ञपन का मनोवैज्ञानिक आधार

भावी ग्राहक अपनी आन्तरिक इच्छाओं और आवश्यकताओं के कारण ही उन विज्ञापनों की ओर आकर्षित होता है, जो उन्हें सन्तुष्ट

करने की क्षमता रखती है। विज्ञापन देखते ही, आवश्यकता की सन्तुष्टि या असन्तुष्टि के अनुसार ही सुखद अथवा दुःखद भाव उत्पन्न होते हैं। साक्षातत्कार विधि से भावी ग्राहकों के बारे में पता चला है कि सबसे शक्तिशाली विचार जो व्यक्ति को प्रेरित करता है वह सफलता और विफलता की स्थिति का है। सफलता प्राप्ति का विश्वास दिलाने वाले विज्ञापन अधिक आकर्षक होते है। इनके अतिरिक्त मृत्यु का विचार, प्रेम, आशा और भय जगाने वाले विज्ञापन भी चित्ताकर्षक होते हैं।

ग्राहकों की यह मनोवृत्ति होती हैं कि जिस वस्तु को वह वर्षों से प्रयोग करते रहते हैं और उनके गुणों पर विश्वास कर लेते हैं तो उसी वस्तु के दूसरे प्रकार को सरलता से नहीं अपनाते। वह व्यापारी बड़ी भूल करेगा जो अपनी वस्तु को बिल्कुल ही अनोखी बना कर प्रस्तुत करें। एक दम नई वस्तु को खरीदने में लोग झिझकते हैं।

विज्ञापन द्वारा प्रभावित होने की प्रक्रिया को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(अ) विज्ञापन को सामग्री में प्रविष्ट होना। (ब) विज्ञापन का मनुवैज्ञानिक प्रभाव (स) विज्ञापन का क्रय-विक्रय पर प्रभाव।

(अ) प्रायः उत्सुकता जगाने वाली, तर्क-वितर्क प्रस्तुत करने वाली प्रेम, घृणा, दया और सहानिभूति इत्यादि उत्पन्न करने वाली, सामग्री की ओर भावी ग्राहक का ध्यान सरलता से आर्कषित होता है। सामग्री में भाव पक्ष या बुद्धि पक्ष को उत्तेजित करने की क्षमता होनी चाहिए।

(ब) मनोवैज्ञनिक प्रभाव तभी उत्पन्न होता है जब किसी विज्ञापन को देखकर धावी ग्राहक यह समझे कि "मुझे इस वस्तु के सेवन से आराम पहुँचेगा।" 'मुझे एक नई बात मालूम हुई।, 'मेरी उत्सुकता शान्त हुई है' 'मुझमें आत्म-विश्वास जागा है।' मैं पहले से अधिक चुस्त हूँ।'

(स) विज्ञापन के व्यापारिक प्रभाव को इस प्रकार जाना जा सकता है कि उसने भावी ग्राहक के मस्तिष्क में कैसे विचार और कल्पना उत्पन्न किये। वैज्ञानिकों का कहना है कि वास्तविक क्रय पहले मानसिक रिहर्सल के रूप में होता है। किसी विज्ञापन को देखते ही, यदि भावी ग्राहक यह अनुभव करे कि वास्तव में वह उस वस्तु को खरीद रहा है, तो विज्ञापन सफल है। जब तक कोई विज्ञापन ग्राहक की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता को नहीं जगाता है तब तक वह सफल नहीं है। अतः विज्ञापन का मुख्य उद्देश्य भावी ग्राहकों में निहित आवश्यकताओं और इच्छाओं को उत्तेजित करना है।

विज्ञापन में चित्ताकर्षण (APPEAL) का प्रयोग

चित्ताकर्षण के लिए विज्ञापन सामग्री को तरह तरह से प्रस्तुत किया जाता है। उसका प्रभाव उसके अनोखेपन पर निर्भर रहता है। कार्टून, कहानियाँ, हास्य चरित्र और कलात्मक प्रदर्शन आदि द्वारा विज्ञापन की सामाग्री प्रस्तुत की जाती है। चित्र शब्दों से अधिक ध्यान को आकर्षित करते हैं। परन्तु चित्र को विक्रयार्थ वस्तु के अनरूप होना चाहिए। यदि किसी सुन्दर स्त्री के चित्र का प्रयोग सीमेंट के बोरों के विज्ञापन में किया जाय तो वह व्यर्थ है। इसके विपरीत वही चित्र सौन्दर्य- प्रसाधनों के विज्ञापन के लिए उपयुक्त होगा।

अनुसन्धान द्वारा ज्ञात हुआ है कि वे वस्तुयें जिनका प्रयोग पुरुष करते हैं, उनके लिए 'पुरुष' का चित्र प्रयोग करना चाहिए तथा स्त्रियों के प्रयोग की वस्तु पर स्त्रियों का चित्र होना चाहिए। इसका कारण यह बताया जाता है कि कोई भी पुरुष उस विज्ञापन को अपने लिए उपयुक्त नहीं समझता, जो स्त्रियों के लिए होता है। यही बात स्त्रियों के लिए भी सत्य है। वे पदार्थ जिनका प्रयोग महिलायें करती हों, उनके विज्ञापन में मल्लयुद्ध अथवा

साहसीकार्य, अनावश्यक खेल के दृश्य अथवा जानवरों के चित्र नहीं होने चाहिए। अनावश्यक जटिल रेखा चित्रों का प्रयोग भी नहीं करना चाहिए। स्त्रियोपपोगी वस्तुओं के विज्ञापन में पारिवारिक दृश्य, विभिन्न खाद्य पदार्थ, शिशु अथवा अन्य सजावटी वस्तुओं के चित्र का प्रयोग होना चाहिए। विज्ञापन द्वारा प्रस्तुत चित्र ऐसा नहीं होना चाहिए जिसमें स्त्रियों का उपहास किया गया हो।

सबसे अधिक चित्ताकर्षक विज्ञापन वह होता है, जिसके द्वारा यह प्रदर्शित किया जाता है कि यदि आपने अमुक वस्तु का प्रयोग नहीं किया तो आप में कौन सी कमी आ जाएगी। प्रायः इस प्रकार के विज्ञापन देखने को मिलते हैं :—

नहाकर सुन्दर युवक एक मेज पर कुछ युवतियों के सामने झुका हुआ है और सबके सब उसके चमकीले बालों की ओर देख रहीं हैं, क्यों कि वह एक विशेष प्रकार के बालों की क्रीम का प्रयोग करता है। किसी समारोह में प्रत्येक व्यक्ति उसकी ओर आकर्षित है, जो कुछ विशेष प्रकार का ही सौन्दर्य प्रसाधन प्रयोग में लाता है। उसकी ओर कोई ध्यान नहीं देता जो इन वस्तुओं के प्रयोग से वंचित है। एक ऐसा भी 'टानिक' है, जिसे पीकर साधारण कर्मचारी. किसी फर्म का जनरल मैनेजर तक हो जाता है और उसका प्रयोग न करने वाला उन्नति नहीं कर पाता। आधुनिक युग में सर्वप्रिय होने की चाह लोगों में प्रबल होती है, अतः इसकी गारन्टी देने वाले विज्ञापन अधिक चित्ताकर्षक होते रहते हैं।

विज्ञापित वस्तु के प्रयोग करने वाले किसी नेता, खिलाड़ी, चित्र-तारिका अथवा विशेषज्ञ के प्रमाण पत्र भी उस वस्तु के विज्ञापन को अधिक चित्ताकर्षक बनाने में सहायक होते हैं।

अध्याय
: ९ :
उद्योग में मनोविज्ञान

हम औद्योगिक युग में रहते हैं। विज्ञान और तकनीक ने औद्योगिक सभ्यता को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया है, परन्तु सर्वदा इसका उपयोग समाज के हित में नहीं होता। सामाजिक आवश्यकतायें उद्योग में नये नये खोजों को प्रेरित करती हैं। अतः उद्योग और व्यक्ति का सम्बन्ध ऐसा होना चाहिए कि दोनों मिलकर मानव जाति की अधिक से अधिक सेवा कर सकें। औद्योगिक व्यवसायों में संसार के असंख्य नर-नारी लगे हुए हैं। उद्योग, शक्ति, कच्चा माल एवं उत्पत्ति के अतिरिक्त मानवीय समस्याओं से भी सम्बन्धित हैं। कर्मचारियों एवं व्यवस्था में अभियोजन स्थापित करने के लिए औद्योगिक मनोविज्ञान का अध्ययन आवश्यक है। जब कर्मचारी और व्यवस्था में मतभेद नहीं होगा तो उत्पादन अधिक होगा। औद्योगिक मनोविज्ञान के अन्दर हम इस अध्याय में कर्मचारियों के चुनाव, कार्य करते समय भौतिक वातावरण, दुर्घटनायें, मजदूरी, हड़ताल और तालाबन्दी के सम्बन्ध में प्रकाश डालेंगे।

कर्मचारियों का चुनाव—किसी कार्य के लिए उपयुक्त व्यक्तियों का चुनाव आवश्यक है। चुनाव के लिए साक्षात्कार (Interview) द्वारा उम्मीदवारों के गुणों को परखकर उन्हें रक्खा जाता है। अतः व्यवस्था को जिस प्रकार कार्य करना हो उसी के अनुसार कार्य करने वाले आदमियों के गुणों का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। तत्पश्चात् उम्मीदवारों को अपने समक्ष उपस्थित कराना चाहिए।

साक्षात् कर्त्ता (Irterviewer)के दोष और गुण

प्रत्येक व्यक्ति जिस मनोवैज्ञानिक वातावरण में रहता है उसके अनुसार कुछ पूर्व- धारणायें प्राप्त कर लेता है। साक्षात्कर्त्ता भूरे बालों वाले, गन्दे दाँतों वाले, बड़ी बड़ी मूँछे रखनेवाले एवं भड़कीले कपड़े पहनने वाले उम्मीदवारों के प्रति अरुचि रखते हैं। साक्षात्कर्त्ता ऐसे लोगों के प्रति न्याय नहीं कर सकता। कुछ अधिकारियों का मत है कि जो व्यक्ति कुछ कह कर पीछे झुकता है यदि वह झूठा होता है और जो आगे झुकता है वह अच्छा विक्रेता हो सकता है। किसी अधिकारी को किसी उद्योग में पहले काम करने वाले ने धोखा दिया है तो वह सर्वदा उस उद्योगवालों पर अविश्वास करेगा। ऐसा भी समझा जाता है कि विश्वविद्यालय और कालेज से निकले हुए स्नातक तीन वर्ष तक नौकरी के अनुशासन में शिक्षा से परे हो कर कार्य नहीं कर पाते। बहुत से अधिकारी ऐसे नवयुवकों को भी नौकरी पर रखने से झिझकते हैं। वे अविवाहित व्यक्ति को विवाहित व्यक्ति की उपेक्षा अधिक उपयोगी समझते हैं, क्योंकि विवाहित व्यक्ति कार्य से अधिक रुचि अपनी पत्नी में ले सकता है।

उपरोक्त धारणायें केवल साक्षात्कर्त्ता के मन के भ्रम हैं जिन्हें वह पहले से अपने मन में बसाये हुए हैं। परन्तु ऐसे उम्मीदवार को नहीं चुनना चाहिए जो साक्षात्कर्त्ता के अवैज्ञानिक और अमनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को सन्तुष्ट करे, ऐसे उम्मीदवार को चुनना चाहिए जो सम्बन्धित कार्य के लिए उपयुक्त हो। अच्छे साक्षात्कर्त्ता में निम्नलिखित गुण होने चाहिए :—

(१) साक्षात्कर्त्ता को पूर्व धारणाओं से मुक्त होना चाहिए ताकि वह उम्मीदवार का मूल्यांकन वस्तुगत आधार पर कर सके।

(२) साक्षात्कर्त्ता को उम्मीदवार के जीवन-इतिहास और वस्तुगत सूचना के आधार पर निर्णय करना चाहिए। चेहरे के रंग हाव-भाव होठों की हरकत इत्यादि से मूल्यांकन करना अटकल लगाने के समान है, जो कभी कभी सत्य हो सकता है परन्तु वैज्ञानिक नहीं हो सकता।

(३) जिस प्रकार और श्रेणी के उम्मीदवारों का साक्षात्कार करना हो उसकी विशेषताओं के बारे में पहले जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

(४) साक्षात्कर्त्ता को पिता-तुल्य नहीं होना चाहिए, जो कि उम्मीदवार के प्रति सहानुभूति और विश्वास का दृष्टिकोण रक्खे, बल्कि वाद-विवाद और तर्क करके उम्मीदवार को परखने की कोशिश करनी चाहिए।

(५) साक्षात्कर्त्ता को उम्मीदवारों के पूर्व अनुभव के आधार पर सर्वदा कार्य-कुशल नहीं समझना चाहिए।

(६) साक्षात्कर्त्ता को जो मुँह में आवे वही नहीं पूछ देना चहिए, बल्कि साक्षात्कार की एक योजना बना कर रखनी चाहिए। चालबाजी के प्रश्नों के बदले स्पष्ट और बुद्धिमत्तापूर्ण प्रश्न करने चाहिए।

(७) उम्मीदवार से कुछ सीधे प्रश्न करके उससे निकटता स्थापित करनी चाहिए। जैसे ऐसे प्रश्न करने चाहिए "इससे पहले आप ने कहाँ नौकरी की है?", "आप की शिक्षा कितनी है?" "आप यह नौकरी क्यों पसन्द करते हैं?"

(८) अच्छे साक्षात्कर्त्ता को निम्नलिखित बातों से बचना चाहिए :

(अ) ऐसे प्रश्न जिनका उत्तर 'हाँ' या 'नहीं' में हो।

(ब) ऐसे प्रश्न जिनका एक ही उत्तर प्रत्येक उम्मीदवार से प्राप्त हो।

(स) निर्धारित उत्तर की ओर ले जाने वाले प्रश्न (Leading question) नहीं करना चाहिए।

अच्छा साक्षात्कार वही हैं जिसमें विचारों का आदान प्रदान होता है और दोनों पर आपेक्षिक प्रभाव पड़ता है। साक्षात्कार के अतिरिक्त बुद्धि-परीक्षा, रुचि-परीक्षा, कार्य-क्षमता-परीक्षण और व्यक्तित्व परीक्षण के द्वारा भी उम्मीदवारों का चुनाव तथा पदोन्नति होती है।

उद्योग के परीक्षण का महत्त्व—आधुनिक उद्योग में उत्पत्ति बढ़ाने के लिए उचित उम्मीदवारों का चुनाव और उनके कार्यों के अनुसार उन्हें

पुरस्कृत और उनकी पदोन्नति करनी आवश्यक है। वे व्यक्ति जिनकी कार्य-क्षमता कम है, उन्हें सुधारने या छाँट देने के लिए परीक्षण आवश्यक है।

(१) परीक्षण द्वारा अयोग्य उम्मीदवारों को छाँट कर योग्य उम्मीदवारों को ले लिया जाता है।

(२) परीक्षण द्वारा चुने गए योग्य उम्मीदवारों के प्रशिक्षण पर अपेक्षाकृत व्यय कम पड़ता है।

(३) इस प्रकार चुने गए और प्रशिक्षित व्यक्तियों पर व्यवस्था का विश्वास अधिक रहता है।

(४) परीक्षण द्वारा केवल उचित व्यक्ति चुने जाते हैं, अतः पक्षपात को बढ़ावा नहीं मिलता। परीक्षण द्वारा यह भी पता चलता है कि नये और पुराने कर्मचारियों को किस प्रकार और कितनी मात्रा में प्रशिक्षण देना है।

(५) वे कर्मचारी जो अपने कार्य से अभियोजन (Adjustment) स्थापित नहीं कर पाते उनके सुधार के लिए परीक्षण आवश्यक है।

(६) कर्मचारियों पर प्रभावात्मक निरीक्षण रखने में परीक्षण सहायक होता है।

पदोन्नतिः—एक कर्मचारी का पद और वेतन उसके जीवन के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इन दोनों के सम्बन्ध में उसकी मनोवैज्ञानिक प्रक्रियायें बहुत तीव्र होती हैं। यदि उसकी सेवाओं का उचित मूल्यांकन नहीं हो सका तो वह हताश हो जाएगा। ऐसी स्थिति का प्रभाव उत्पादन पर पड़ेगा। अतः प्रत्येक अधिकारी को तीन बातों पर ध्यान देना चाहिएः—

(i) उसे अपने कर्मचारियों के सम्बन्ध में परीक्षण और कार्यों का लेखा-जोखा रखना चाहिए।

(ii) उसे कर्मचारी के कार्य के बारे में जानकारी रखनी चाहिए और उपयुक्त व्यक्ति की पदोन्नति करनी चाहिए।

(iii) सामयिक साक्षात्कार द्वारा कर्मचारियों को परखते रहना चाहिए।

कर्मचारियों के लिए अपने व्यवसाय के सम्बन्ध में निम्नलिखित गुण होने चाहिए:—

(१) उसे अपने कार्य के प्रति उत्तरदायित्व का अनुभव करना चाहिए।

(२) कार्य के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान रखना चाहिए।

(३) कार्य को सम्पन्न करने के लिए उपयुक्त कुशलता होनी चाहिए।

(४) कार्य के अनुसार उसके इन्द्रियों और स्वास्थ्य को ठीक रहना चाहिए।

(५) उसका सामाजिक व्यवहार उचित होना चाहिए।

(६) उसमें निरीक्षण की क्षमता होनी चाहिए।

इन्हीं गुणों के आधार पर वह अपने कार्य में सफल हो सकता है। व्यवस्था को, कर्मचारियों को इस प्रकार संगठित करना चाहिए कि कर्मचारियों के उपरोक्त गुणों का प्रकाशन हो सके।

पदोन्नति के द्वारा कर्मचारी अपने को सन्तुष्ट पाता है। पदोन्नति को भाग्य का खेल नहीं बनाना चाहिए, बल्कि उसे व्यवस्थित रूप से व्येवहार में लाना चाहिए। पदोन्नति के दो मुख्य नियम हैं:—

(अ) कुछ व्यवस्था अपने ही संगठन में कार्य करने वाले व्यक्तियों की पदोन्नति करती है। परिणामस्वरूप अस्वस्थकर और अकार्यकुशल तत्वों को प्रोत्साहन मिलता है और केवल औसत दर्जे की देख-भाल हो पाती है। उचित व्यवस्था यह है कि कुछ प्रतिशत पदोन्नति संगठन के अन्दर से और शेष बाहरी व्यक्तियों से की जानी चाहिए।

(ब) प्रत्येक संगठन में नये खून की आवश्यकता होती है। अतः पदोन्नति पर बाहर से अधिक शिक्षित और अधिक उपयुक्त लोगों को उन्नत पद पर नियुक्त किया जाता है। इनका दृष्टिकोण व्यापक होता है।

कर्मचारियों की कार्यक्षमता में वृद्धि करनेवाली दशायें

प्रतिकूल वातावरण में कार्य करने वाले कर्मचारियों की कार्य क्षमता का ह्रास होता है, परन्तु इस तथ्य का पता साधारण बात-चीत द्वारा नहीं लगता। जब कार्य-कुशलता घटने लगे तो व्यवस्था को, कार्य करने की अवस्थाओं का सावधानी से अध्ययन करके, कार्य-क्षमता में ह्रास लाने वाले कारणों को दूर करना चाहिए। यद्यपि कार्य करने की प्रेरणा और आदर्श, उत्पादन की वृद्धि में सहायक हो सकते हैं, परन्तु मौलिक दशाओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती। कार्य-कुशलता में वृद्धि के लिए निम्नलिखित तत्वों की सुव्यवस्था पर ध्यान देना चाहिए:—

प्रकाश (Light)

(१) अच्छी प्रकाश-व्यवस्था कार्य-कुशलता बढ़ाती है। इससे कर्मचारी कम प्रयत्न से अधिक उत्पादन कर सकते हैं। अपर्याप्त प्रकाश व्यवस्था से बहुत से लोगों के चित्त में बेचैनी उत्पन्न होती है। प्रकाश पर्याप्त, निरन्तर और सामान्य रूप से विस्तृत होना चाहिए। ये गुण, सूर्य के प्रकाश में सर्वदा नहीं पाये जाते हैं। अतः कारखानों में काम करने के लिए उचित प्रकाश का प्रबन्ध करना पड़ता है। कर्मचारियों पर अपर्याप्त प्रकाश द्वारा उत्पन्न प्रभावों को बहुत सी व्यवस्थायें नहीं समझ पातीं। कहा जाता है कि गन्दी लालटेनें और अपर्याप्त प्रकाश-व्यवस्था उत्पादन के लिए हड़ताल से भी अधिक घातक हैं। कारखानों में प्रकाश पर किये गए अनुसन्धान से पता चलता है कि अच्छी प्रकाश-व्यवस्था अवश्य ही उत्पादन वृद्धि में सहायक होती है। प्रकाश के निम्न गुण कार्य-क्षमता को प्रभावित करते हैं:—

(अ) चमक और तीव्रता (आ) रंग विस्तार।

जिस स्थान पर वास्तविक कार्य हो रहा हो, उस स्थान पर आँखों को अधिक चमत्कृत करने वाला प्रकाश नहीं पड़ना चाहिए। इसके कारण आँखें शीघ्र ही थक जाती हैं। चमकदार और कलई की गई वस्तुओं पर पड़ने वाला प्रकाश भी हानिकारक होता है। इस लिए आँखों के सामने ऐसी चमकदार वस्तुओं को नहीं रखना चाहिए। प्रायः पीले और हरे रंग का प्रकाश उपयुक्त समझा जाता है, परन्तु प्रकाश का रंग ऐसा होना चाहिए कि वस्तुओं का वास्तविक रंग न बिगड़ने पाए। प्रत्येक कर्मचारी और व्यवसाय के लिए प्रकाश की तीव्रता भिन्न होती है। कार्य, जितने तीव्र प्रकाश में सुगमता से हो सकें, वही उसके लिए निश्चित्त सीमा है।

अपर्याप्त प्रकाश से कार्य क्षमता एवं उत्पादन में कमी, अशुद्धियों की संख्या-वृद्धि और दुर्घटनाओं का खतरा रहता है।

उचित प्रकाश-व्यवस्था में कार्य करने से रुचिकर-भाव उत्पन्न होते हैं, साथ ही साथ उत्पादन में वृद्धि भी होती है।

(आ) रंग (Colour)—प्रकाश की भाँति रंग भी कर्मचारियों की थकावट दूर करने एवं उनकी कार्य-कुशलता बढ़ाने में सहायक होता है। इससे दुर्घटनाओं की सम्भावना में कमी होती है। काली-भद्दी दीवालों पर सर्वोत्तम प्रकाश व्यवस्था भी व्यर्थ हो सकती है। कारखानों में रंग का प्रयोग केवल सौन्दर्य-वृद्धि के लिए नहीं होता, वरन कर्मचारियों के देखने की क्षमता में वृद्धि के लिए भी होता है।

आँखों पर जोर पड़ने से स्नायु-तनाव और थकावट उत्पन्न होती है। भद्दे रंग और अनियमित रंग विरोध के कारण आँखों पर जोर पड़ता है। रंग के द्वारा, कर्मचारी वातावरण से सरलतापूर्वक अभियोजन स्थापित कर सकता है।

प्रायः पीले और नारंगी रंग गर्म संवेदना उत्पन्न करते हैं। इनके उचित प्रयोग से कार्य-कुशलता बढ़ाई जा सकती है। हरा रंग मस्तिष्क को आराम पहुँचाने के लिए सर्वोत्तम है। नीले रंग से शान्ति प्राप्त होती है। भूरा रंग मानसिक शान्ति और शान्त वातावरण प्रदान करता है। काम करते समय यदि ताप-क्रम अधिक हो तो ठन्डे रंग (नीला और हरा) का प्रयोग करना चाहिए। यदि वातावरण शीतल हो तो लाल, नारंगी, नीले, सफेद आदि रंगों का प्रयोग करना चाहिए। शुद्ध रंगों का प्रयोग उचित नहीं होता। कोमल रंगों का प्रभाव अच्छा होता है। घिरे हुए स्थान में कार्य करने वाले कर्मचारियों को दीवालों के ठन्डे रंगों पर देखने से आराम मिलेगा। मजदूर यदि काले रंग की वस्तुओं पर कार्य कर रहे हों तो दीवालों का रंग चमकीला सफेद नहीं होना चाहिए रंगों के उचित चुनाव से कर्मचारियों की थकावट में कमी होती है, आँखों को आराम पहुँचाता है, चित्त प्रसन्न रहता है तथा कार्य-कुशलता में वृद्धि होती है।

वातायन (Ventilation)

(२) स्वच्छ वायु को प्राप्त करना तथा गन्दी वायु को बाहर निकालना वातायन का मुख्य उद्देश्य है। वातायन और तापमान में घनिष्ट सम्बन्ध है। यदि खिड़कियों के द्वारा हवा और प्रकाश का प्रवेश होता रहेगा तो तापमान भी उचित रहेगा। वातायन की गड़बड़ी से सरदर्द, बेचैनी और मचली आदि उत्पन्न हो जाती है। कारखाने में कच्चे माल के कारण वायु दूषित हो जाती है। इसे दूर करने के लिए, दीवालों में, अन्दर की दूषित वायु को खींच कर बाहर छोड़ने वाले बिजली के पंखे लगाये जाते हैं। शारीरिक कार्य करने वाले व्यक्तियों को मानसिक कार्य करने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक वातायन की आवश्यकता पड़ती है।

तापमान (Temprature)

(३) तापमान की कमी और अधिकता दोनों ही उत्पादन के लिए हानिकारक हैं। किसी कार्य - विशेष के लिए उसी के अनुसार तापमान निर्धारित किया जा सकता है। प्राय: ६२ अंश से ६३ अंश फायरन ० तापमान कम परिश्रम वाले कार्य के लिए उपयुक्त है। आधुनिक उद्योगों में उपयुक्त तापमान रखने के लिए विजली के पंखों, अंगीठी तथा शीत-यंत्रों (Cooling Plants) से युक्त एवं वातानुकूलित (Air Conditioned) कार्यालयों की व्यवस्था की जाती है।

कोलाहल (Noise)

(४) लगभग प्रत्येक कारखाने और कार्यालय में कुछ न कुछ कोलाहल उत्पन्न होता है। बहुत से कर्मचारी कोलाहल से ज़रा भी विचलित नहीं होते परन्तु कुछ के लिए यह समस्या बन जाता है। कुछ तो कोलाहल की पृष्ठ-भूमि में ही कार्य करना उचित समझते हैं। अतः कोलाहल के प्रति प्रतिक्रिया बहुत कुछ मानसिक दृष्टिकोण के द्वारा प्रभावित होती है। अत्यधिक तीव्रध्वनि और अनियमित यांत्रिक ध्वनियाँ निश्चित ही कार्य-क्षमता कम करती हैं।

सर्व प्रथम कोलाहल बड़ा अरुचिकर होता है, परन्तु मनुष्य क्रमशः उससे अपना अभियोजन स्थापित कर लेता है। यांत्रिक क्रियाओं की अपेक्षा मानसिक कार्यों में कोलाहल अधिक विघ्नकारक होता है। प्रयोगों द्वारा यह भी ज्ञात हुआ है कि कोलाहल के कारण व्यक्ति को अपने ध्यान को कार्य पर अधिक केन्द्रित करके सावधानी बरतनी पड़ती है। इस प्रकार कोलाहल के कारण कार्य-क्षमता में वृद्धि भी होती है और कार्य में शक्ति भी अधिक लगती है।

कोलाहल रोकने के लिए मोटें अथवा दुहरे शीशे वाली खिड़कियाँ सहायक सिद्ध हुई हैं। कोलाहल के प्रभाव से बचने के लिए कर्णरक्षक

यंत्र (Ear defender) का व्यवहार भी किया जा सकता है। किसी भी कारखाने में कोलाहल को कम करने के लिए 'साउन्ड-इन्जीनियर' से परामर्श करना चाहिए। बीच-बीच में दस बारह मिनट तक संगीत सुनाने से कर्म-चारियों की थकावट दूर करने में सहायता मिलती है।

(५) कार्यावधि (Hours of work) आधुनिक युग में सभी सभ्य देश लगभग ४० घण्टे प्रति सप्ताह कार्य करना उचित समझते हैं। रूस और अमेरिका में कार्य के घन्टे और भी कम किए जा रहे हैं। अधिक समय तक कार्य कराने से थकावट आती है और कार्य-कुशलता में कमी होती है। कार्य करने की अवधि जितनी ही कम होती है, कार्य क्षमता उतनी ही अधिक होती है। आशा की जाती है कि टेकनिकल उन्नति के साथ ही कार्य करने के घन्टों में कमी होती जाएगी और उत्पादन बढ़ता जाएगा। अवकाश मिलने से संस्कृति और सभ्यता के क्षेत्र में कर्मचारी उन्नति करते हैं।

थकावट और नीरसता

मनोवैज्ञानिकों का मत है कि प्रत्येक मानसिक थकावट, शारीरिक थकावट से सम्बन्धित रहती है फिर भी मानसिक थकावट और मांस पेशियों की थकावट में अन्तर समझा जाता है। कुछ कार्यकर्त्ता थके न होने पर भी कम उत्पादन करते हैं। इसका कारण यह है कि उनके शरीर में शक्ति उत्पन्न करने वाले पदार्थों की कमी होती है। यदि व्यक्ति को उचित पुरस्कार मिलने की सम्भावना हो तो मांस-पेशियों के थकने के बाद भी व्यक्ति काम करता रहता है। संवेगोत्तेजन अथवा लक्ष्य प्राप्त करने के ध्येय से थकने पर भी कार्य में कमी नहीं होने पाती।

थकावट और नीरसता में अन्तर है। आराम से थकावट दूर हो जाती है। थकावट के साथ कुछ मनोदैहिक परिवर्तन अवश्य होते हैं,

परन्तु नीरसता (Bordom) की स्थिति में अधीरता, बेचैनी और जम्हाई इत्यादि आती है। तीव्र बुद्धि के व्यक्ति शीघ्र ही नीरसता का अनुभव करने लगते हैं। यदि उनकी रुचि में नवीनता आ जाय तो नीरसता समाप्त हो जाती है। नीरसता को व्यक्ति गाने, दिवास्वप्न देखने और बात-चीत करके दूर करता है। थकावट और नीरसता को दूर करने के लिए कार्य के बीच विश्राम के लिए अवकाश देना चाहिए। आराम देकर औद्योगिक मजदूरों की कार्य-क्षमता बढ़ाई जाती है।

दुर्घटनायें (Accidents)

बहुत-सी व्यवस्थायें यह समझती हैं कि दोषपूर्ण यंत्र रचना, खतरनाक स्थानों की असुरक्षा एवं अपर्याप्त प्रशिक्षण आदि औद्योगिक दुर्घटना के कारण होते हैं। परन्तु मनोवैज्ञानिक निरोक्षण से पता चला है कि लगभग ८० से ९० प्रतिशत तक दुर्घटनाओं के कारण दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति के व्यक्तित्व में ही निहित होते हैं। ऐसे लोगों को दुर्घटना-उन्मुख (Accident Prone) कहते हैं। बचपन से ही दुर्घटनाशीलता पाई जाती है। दुर्घटना उन्मुख व्यक्तियों में प्रायः निम्न तीन विशेषतायें पाई जाती हैं:—

(अ) वे आवश्यकता से अधिक भयभीत रहते हैं।

(ब) जीवन के प्रति भाग्यवादी दृष्टिकोण रखते हुए भी अपने को अभाग्यशाली समझते हैं।

(स) बचपन ही से माता-पिता और शिक्षक के प्रति बदला लेने वाला दृष्टिकोण रखते हैं।

खोजों से पता चला है कि जिन लोगों का दैहिक संवेदन गति यन्त्र मन्द होता है तथा ठीक-ठीक कार्य करने वाला भी नहीं होता, वही व्यक्ति अधिक दुर्घटनाग्रस्त होते हैं। स्नायु अस्थिरता के कारण भी दुर्घटनायें होती है।

इन कारणों के अतिरिक्त पुरुषों से अधिक स्त्रियाँ दुर्घटनाग्रस्त होती हैं। रक्तचाप के रोगी और शारीरिक रूप से अपरिपक्व व्यक्ति दुर्घटनाग्रस्त होते हैं। ध्यान का इधर-उधर भटकना और अनुभव-हीनता दुर्घटना के कारण बन जाते हैं। कठोर परिश्रम वाले कार्य करने से जल्द थक जाने के कारण कर्मचारी दुर्घटना ग्रस्त हो सकता है। लगातार परिश्रम करने से व्यक्ति शारीरिक परिश्रम करने में असमर्थ रहता है। लम्बी अवधि तक काम करने से कर्मचारी थकावट अरुचि, दिवास्वप्न और झपकी के कारण औद्योगिक दुर्घटनाओं का शिकार हो सकता है। कार्य करने की गति इतनी नहीं बढ़ानी चाहिए कि कर्मचारी अनियंत्रित होकर दुर्घटना ग्रस्त हो जाय। जिन उद्योगों में दो पालियों (Shifts) में कार्य होता है वहाँ पर दुर्घटनायें अधिक होती हैं। रात्रि-पाली के प्रारम्भ में परिवार से दूरी और आराम में बाधा पड़ने के कारण कर्मचारी झुँझलाया हुआ रहता है। इससे दुर्घटना होने की अधिक सम्भावना रहती है। दिन की पाली में कर्मचारी प्रायः कार्य की अवधि में, दिनभर के कार्य से मुक्ति पाने और मनोरंजन के विचार में इतना लीन रहता कि उसे आस-पास चलने वाले यंत्रों का ध्यान नहीं रहता। अतः वह विभिन्न प्रकार की दुर्घटनाओं से ग्रस्त हो जाता है। इसीलिए रात्रि की पाली में कार्य करने वाले कर्मचारियों को अधिक मजदूरी और भत्ता दिया जाता है। दिन की पाली में कार्य करने वाले कर्मचारियों को उत्तेजित होने से रोका जाता है।

दोषपूर्ण यन्त्र-रचना (Defective Machine Design) अधिकतर दुर्घटनाओं का कारण होती हैं। देखा गया है कि मशीन का मालिक यन्त्रों के घिसने-पीटने के बाद भी बदलता नहीं है और किसी न किसी प्रकार कार्य चलाता ही रहता है। परिणाम स्वरूप यन्त्र में कोई अकस्मात विस्फोट हो जाता है। आटे की चक्की के पुराने पट्टे इसी कारण टूटते हैं और कर्मचारियों की जान ले लेते हैं। खतरनाक यन्त्रों

पर ऐसा आवरण या घेरा होना चाहिए कि दुर्घटनायें न हो सकें। अभियन्ता और निरीक्षक की अदूरदर्शिता के कारण भी दुर्घटनायें हो जाती हैं।

दुर्घटनाओं को रोकने के लिए उन अवस्थाओं में सुधार आवश्यक है। अच्छी प्रकाश-व्यवस्था, उचित वातायन, सम तापमान इत्यादि के कारण दुर्घटनाओं की सम्भावनायें कम होती हैं। कर्मचारियों को उचित प्रशिक्षण देना आवश्यक है। यथासम्भव अनुभवी कर्मचारियों को ही ऐसे यन्त्रों पर कार्य करना चाहिए जिन पर दुर्घटनाओं की सम्भावना अधिक है। कर्मचारियों के चुनाव से पूर्व उनका शारीरिक और मानसिक परीक्षण आवश्यक है। समय-समय पर उनकी डाक्टरी परीक्षा कराते रहना चाहिए। मानसिक स्वास्थ्य के सभी पहलुओं पर उचित ध्यान देना चाहिए। दुर्घटनाओं से बचने के लिए विज्ञापन और पैम्फलेटों के द्वारा उचित जानकारी करानी चाहिए। पुराने यन्त्रों को बदलते रहने चाहिए। समय-समय पर कर्मचारियों को सावधानी के सम्बन्ध में भाषण द्वारा उनकी ज्ञानवृद्धि करनी चाहिए। सावधानी बरतने का प्रशिक्षण देना चाहिए।

कार्य पर यदि कोई मजदूर घायल होता है, तो मालिक उसे हरजाना देता है। सरकार के दुर्घटना की क्षतिपूर्ति के नियम बना रक्खे है। परन्तु अभी उनका पालन कठोरता से नहीं किया जाता। विभिन्न प्रकार के दाँव पेंच लगाकर मजदूरों को क्षतिपूर्ति से वंचित रखने का प्रयत्न किया जाता है।

प्रशिक्षण (Training)

आधुनिक मनोविज्ञान व्यक्तिगत भिन्नता को स्वीकार करता है। अपने शील गुणों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति प्रशिक्षण से लाभ उठाता है। वर्तमान औद्योगिक कार्यों में उत्पादन वृद्धि के लिए प्रशिक्षण आवश्यक है। प्रशिक्षण की चार सोपान वाली विधि निम्नलिखित है।—

(१) तैयारी:—इसके अन्तर्गत कर्मचारी को प्रशिक्षण के लिए सजग करना होता है।

(अ) सीखने वाले को यथोचित स्थान देना चाहिए। ताकि वह असुविधा का अनुभव न करे।

(ब) उसे कार्य का नाम बताना चाहिए।

(स) उसे कार्य के उद्देश्य से अवगत कराना चाहिए ।

(द) उसे यह भी बताना चाहिए कि उस कार्य के लिए वह क्यों चुना गया है।

(य) उदि उसके पहले उसने कहीं कार्य किया है, तो उसके अनु-भव सुनना चाहिए।

(२) प्रस्तावना :—इसे सोपान के अन्तर्गत सिखायी जाने वाली सामग्री प्रस्तुत की जाती है।

(अ) उसे औजार, यन्त्र एवं सामग्री के बारे में बताना चाहिए।

(ब) प्रत्येक वस्तुओं का प्रयोग सावधानी पूर्वक उसे समझाना चाहिए।

(स) जब तक वह बतलाई गई बातों को सीख नहीं लेता तब तक सारे क्रम को दुहराना चाहिए।

(३) क्रियात्मकता:—इसके अन्तर्गत सीखने वाले को कार्य करने की आदत डाली जाती है।

(अ) उसके कार्यों का निरीक्षण करना चाहिए।

(ब) महत्त्वपूर्ण और हानिकारक तथ्यों पर उससे प्रश्न करना चाहिए।

(स) जब तक सीखने वाला अपने कार्य में निपुण नहीं हो जाता, तब तक उससे कार्य कराना चाहिए।

(४) जाँच (Test):—इस सोपान द्वारा प्रशिक्षण की सफलता आँकी जाती है।

(अ) उसे अकेले कार्य करने देना चाहिए।

(ब) यह देखना चाहिए कि वह निर्धारित माप-दण्ड के आधार पर कार्य कर रहा है अथवा नहीं।

(स) जहाँ वह भूल करता है उसके सम्बन्ध में उसे विशिष्ट रूप से प्रशिक्षित करना चाहिए।

हड़ताल तथा तालाबन्दी (Stri ke and Lock outs)

हड़ताल उस स्थिति को कहते हैं, जिसमें मजदूर स्वयं कार्य करने से इन्कार करते हैं। हड़ताल का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। परन्तु हड़ताल के मूल में यह बात निहित है कि मालिक और मजदूरों का टकाराव उपस्थित है। इस हित के अनेक रूप हो सकते हैं। मजदूर अच्छी मजदूरी, सुविधायें और सुरक्षा के लिए हड़ताल करता है। मालिक मजदूरों का शोषण करके, अधिक से अधिक नफा कमाने का प्रयत्न करता है। दोनों के पारस्परिक द्वन्द्व का यही आधार है। हड़ताल के कारणों को सुविधानुसार दो वर्गों में विभाजित किया जाता है।

(१) मनोवैज्ञानिक कारण:—प्रत्येक कर्मचारी अपनी सुरक्षा चाहता है। नौकरी कर लेने के बाद उसका अपना एक जीवन स्तर बन जाता है, जिसे वह दिन प्रति-दिन ऊँचा उठाना चाहता है। उसके अन्दर महत्त्वाकांक्षायें भी होती हैं जिनकी पूर्ति के लिए वह संगठित दबाव डालते हैं। आर्थिक असुरक्षा के कारण उनमें विश्वास उत्पन्न होता है कि मजदूर संघ ही उनकी रक्षा कर सकते हैं। एक मजदूर, यूनियन के बहुत से कार्यों से असहमत होते हुए भी, अपनी सुरक्षा के लिए, अपना सम्बन्ध नहीं तोड़ता। मजदूरों को उत्तेजित करने वाले निम्नलिखित मुख्य कारण हैं—

(i) जीवन और स्वास्थ्य का खतरा (ii) गर्मी, सर्दी, नमी, थकावट तथा असन्तुलित भोजन का होना। (iii) छँटनी की सम्भावना (iv) आवागमन पर प्रतिबन्ध (v) अलग किया जाना

(vi) उनके पारिवारिक सदस्यों एवं मित्रों को खतरा। (vii) दूसरे लोगों द्वारा चिढ़ाया जाना अथवा बहिष्कृत किया जाना। (viii) अधिकारियों का असहानुभूति पूर्ण दुर्व्यवहार।

(२) सामाजिक कारण:—आधुनिक औद्योगिक समाज में श्रम सबसे महत्त्वपूर्ण शक्ति है। (अ) शासन-यंत्र को प्रभावित करने के लिए मजदूरों पर प्रभाव जमाना राजनैतिक दलों का एक मुख्य उद्देश्य होता है। ये दल मजदूरों को अपने प्रभाव में रहने वाले संघों में संघटित करते हैं। राजनैतिक दलों का यह विश्वास होता है कि संघर्षों को चलाकर, मजदूरों को सुविधा दिलाने से उनका प्रभाव बढ़ता है। अतः इस राजनैतिक उद्देश्य से भी हड़तालें करायी जाती हैं।

(ब) आधुनिक युग में मजदूर वर्गीय सिद्धान्त के आधार पर संगठित हो चुके हैं। अतः उनके हितों को क्षति पहुँचते ही संघर्ष की सम्भावना उठ खड़ी होती है।

(स) जीवन-स्तर को ऊँचा करने के लिए आर्थिक माँगों (वेतन, भत्ता, तथा बोनस में वृद्धि आदि) के लिए हड़तालें होती हैं। यह सुविधायें, मालिक पर दबाव डाल कर, प्राप्त की जाती हैं।

(द) कभी-कभी कुछ व्यापक राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रिय समस्याओं को लेकर भी हड़तालें होती हैं। जैसे किसी गोली काण्ड के विरुद्ध प्रदर्शन, राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय योग देने के लिए हड़ताल का होना। इसके अतिरिक्त युद्ध और उपनिवेशवाद के विरुद्ध भी हड़तालें हुआ करती हैं।

(य) प्रत्येक देश की प्रजातांत्रिक शासन-व्यवस्था में हड़ताल एवं प्रदर्शन आदि को नागरिको के मूल अधिकार के रूप में स्वीकार किया जाता है।

मजदूर और मालिक का विरोध कुछ बुनियादी कारणों पर आधारित है। उसे साधारण हृदय-परिवर्तन के द्वारा समाप्त नहीं किया

जा सकता। मजदूर का वेतन, सुरक्षा, चिकित्सा, मनोरंजन, पालन-पोषण आदि मौलिक आवश्यकताओं का पूरा होना अनिवार्य है। भविष्य निधि (Provident Fund), क्षति-पूर्ति और अवकाश के उचित नियमों का होना आवश्यक है।

राजनैतिक दलों को अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए औद्योगिक अशांति का सहारा नहीं लेना चाहिए। कभी-कभी किसी उच्चाधिकारी की हठ-वादिता या उसके द्वारा किए गए असहानुभूति पूर्ण व्यवहार भी हड़ताल के कारण बन जाते हैं। अधिकारियों को वहुत सतर्क और सन्तुलित विचार-धारा का होना चाहिए। भारत सरकार ने औद्योगिक अशाति दूर करने के लिए संघर्ष-समझौता परिषद स्थापित किया हैं। इसके समक्ष मजदूर और मालिक दोनों ही उपस्थित होकर अपने मामले को शान्तिपूर्ण ढंग से तय करते हैं। भारत सरकार ने कुछ आवश्यक उद्योगों जैसे फौज, पुलिस, रेल, याता-यात आदि में हड़ताल को गैरकानूनी घोषित कर दिया है।

ताला बन्दी (Lock Out)

तालाबन्दी उस परिस्थिति को कहते हैं जब मिल मालिक अपने आर्थिक हितों की रक्षा के लिए स्वयं कारखानों को बन्द कर देता है। तालाबन्दी के पीछे प्रायः मनोवैज्ञानिक कारण नहीं होते। मूलतः यह आर्थिक आत्म-रक्षा विधि है। तालाबन्दी के निम्न कारण हो सकते हैं—

(अ) यदि कच्चा माल और शक्ति के साधन अपर्याप्त हो जायें तो मिल मालिक को मजबूर होकर कारखाना बन्द करना पड़ता है।

(ब) जब किसी उद्योग के माल की माँग बाजार में नहीं रह जाती तो आर्थिक गिरावट के कारण मिल-मालिक को कारखाना वन्द कर देना पड़ता है।

(स) मिल-मालिक का दीवाला निकल जाने पर भी मिल में ताला बन्दी की घोषणा हो जाती है।

(द) कभी-कभी मालिक और मजदूर के आपसी संघर्ष में मजदूरों पर आर्थिक संकट लाने के लिए तालाबन्दी कर दी जाती है।

तालाबन्दी की स्थिति में मजदूर और राष्ट्र दोनों की ही क्षति होती है। वेरोजगारी बढ़ जाने से सामाजिक अशान्ति का खतरा रहता है। एकाएक हजारों व्यक्तियों के वेरोजगार हो जाने से पारिवारिक, सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक संकट उपस्थित हो जाता है। मजदूरों में निराशा और क्रोध उत्पन्न होता है। इन सबका कुप्रभाव उनके स्त्री और बच्चों पर भी पड़ता है। बच्चों की पढ़ाई अस्तव्यस्त हो जाती है। मजदूर कभी-कभी निराश होकर आत्महत्या तक कर बैठता है। उनका तथा उनके-बाल-बच्चों का नैतिक पतन हो जाता है। असुरक्षा के कारण अपराध की भावना बढ़ जाती है। उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए सरकार को ताला वन्दी की स्थिति में तत्काल हस्तक्षेप करना चाहिए।

उद्योग में मानव सम्बन्ध

(Human relations in Industry)

अच्छे सम्बन्धों के लिए दो बातों का होना आवश्यक है—

(१) एक दूसरे के प्रति पूरी जानकारी (२) सहन-शीलता। इन्हीं दो नियमों का पालन उद्योगों में भी होना चाहिए, ताकि मजदूर और मालिक के सम्वन्ध सौहार्दपूर्ण रह सकें। यह आवश्यक नहीं है कि जो इकाई दोनों में आदर्श सम्बन्ध रखती है, उसका उत्पादन अधिक हो, परन्तु दोनों के सम्बन्ध अच्छे होने से दीर्घकाल में उत्पादन में वृद्धि होती है तथा कारखाने को सम्मान प्राप्त होता है। सामाजिक सुदृढ़ता बनी रहती है। मजदूर और मालिक के सम्बन्धों को अच्छा बनाने में मुनाफे का बँटवारा सहायक होता है।

मुनाफे का बंटवारा (Profit Sharing)

मुनाफा वितरण की योजना नई नहीं है, बल्कि इग्लैंड में तेरहवीं शताब्दी में भी कृषि उद्योग में इस प्रकार की व्यवस्था थी। मुनाफे का वितरण दो प्रकार से होता है :—

(अ) मुनाफे का वार्षिक वितरण कर दिया जाता है। (ब) मुनाफे को जमा करते हैं और अवकाश, पंगुता अथवा मृत्यु के पश्चात् दिया जाता है। मुनाफा वितरण से कर्मचारियों में सामाजिक न्याय के प्रति आस्था जागृत होती है।

मुनाफा की मात्रा पहले से निर्धारित नहीं रहती है इसलिए कर्मचारी उसके प्रति उदासीन रहते हैं और जो मिल जाय उसको मुफ्त का माल समझते हैं। कर्मचारियों का यह स्वभाव होता है कि वे निश्चित दर से अधिक सन्तुष्ट होते हैं। यदा-कदा प्राप्त होने वाले धन उन्हें पर्याप्त सन्तोष नहीं दे पाते।

किसी वर्ष यदि मुनाफा न हो तो भी मजदूर व्यवस्था पर विश्वास नहीं करते और समझते हैं, कि हिसाव-किताब में कि किसी प्रकार गड़-बड़ी हुई है। वार्षिक आय की तुलना में मुनाफे का हिस्सा इतना कम मिलता है कि वह सन्तुष्ट नहीं होता। अतः उसको सन्तुष्ट करने के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है :—

(अ) मुनाफा-वितरण योजना को लागू करने से पहले उचित मनो वैज्ञानिक वातावरण उत्पन्न करना चाहिए ताकि मजदूर और मालिक में सद्भावना बनी रहे।

(ब) मालिक को कम्पनी की पूर्ण वित्तीय-स्थिति की सूचना मजदूरों को देनी चाहिए।

(स) मुनाफे का वितरण यथासम्भव समानता के सिद्धान्त पर होना चाहिए।

सुझाव प्रणाली (Suggestion system)

व्यवस्था और मजदूर के सम्बन्ध इस प्रकार होने चाहिए कि वे उद्योग की उन्नति के लिए एक दूसरे को सुझाव दे सकें। व्यवस्था को चाहिए कि वे कार्य-कर्त्ताओं से सुझाव माँगें। प्रत्यक्ष रूप से पूछने पर प्रायः कर्मचारी सुझाव नहीं प्रस्तुत करते। यदि सुझावों के लिए एक पेटिका की व्यवस्था कर दी जाय तो वे उसमें अपना सुझाव डाल देंगे। सुझाव को बढ़ावा देने के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए—

(i) सुझाव-प्रतियोगिताओं का आयोजन करके सर्वोत्तम सुझाव देने वालों को पुरस्कृत करना चाहिए।

(ii) महत्वपूर्ण पदों पर कार्य करने वाले कर्मचारियों के सुझाव को महत्व देना चाहिए।

(iii) सुझावों की जाँच के लिए एक कमेटी बना देनी चाहिए जो अच्छे सुझावों को छाँट ले और उन्हें पुरस्कृत करे। जो सुझाव रद्द किये जायँ उनका कारण भी बताना चाहिए।

सुझाव प्रणाली की उपयोगिता, व्यवस्था की सतर्कता और योग्यता पर निर्भर करती है। विशेषज्ञों को जाँच करके सुझावों की उपयोगिता का पता लगना चाहिए और जो सुझाव सन्तोषजनक परिणाम दे सकें, उनको कार्यान्वित करने का प्रयत्न करना चाहिए।

अन्य उपाय

मिल-मालिक और मजदूर के अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने के लिए निम्न अन्य उपायों को भी व्यवहार में लाना चाहिए—

[१] पर्व तथा उत्सवों को दोनों को मिलजुल कर उल्लासपूर्ण वातावरण में मनाना चाहिए।

[२] नाटक, संगीत, वैराइटीशो आदि सांस्कृतिक कार्य-क्रमों का आयोजन करना चाहिए।

[३] तात्कालिक चिकित्सा की व्यवस्था होनी चाहिए।

[४] मजदूरों के विश्राम और मनोरंजन-गृहों की व्यवस्था होनी चाहिए।

[५] मजदूरों की वास्तविक कठिनाइयों को दूर करना चाहिए।

[६] मजदूरों में सुरक्षा का भाव भरने के लिए भाषण, पुस्तिका, और पैम्पलेट के द्वारा कम्पनी की सहानुभूतिपूर्ण मनोवृत्ति का विश्वास दिलाना चाहिए।

श्रम कल्याण (Labour Welfare)

औद्योगिक श्रमिक अब संगठित हो गये हैं। प्रत्येक देश की राजनीतिमें उनका विशेष महत्त्व है। यहाँ तक कि अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर एकता के प्रयत्न जारी हैं। मजदूर के ऊपर औद्योगिक उत्पादन निर्भर है। अतः उसे हर प्रकार से सन्तुष्ट रखने से उत्पादन बढ़ सकता है। मजदूर की अशान्ति से राजनैतिक हलचल भी उत्पन्न हो जाती है।

औद्योगिक मजदूरों के कल्याण के लिए प्रत्येक देश स्वेच्छया कुछ कार्य करता है, जैसे नौकरी की सुरक्षा, दुर्घटना से सुरक्षा, सस्ते मकान, छुट्टी, मनोरंजन, शिक्षा एवं चिकित्सा का प्रबन्ध। ऐसे ही कार्य श्रम-कल्याण के अन्तर्गत आते हैं।

नौकरी की सुरक्षा के लिए कमीशन और श्रम न्यायालय जैसी संस्था बना ली जाती है। नियुक्ति, पदोन्नति स्थानान्तरण, पद से अलग करना आदि समस्याओं पर कमीशन दृष्टि रखता है। इससे धाँधली नहीं होने पाती। श्रम न्यायालय में मालिक और मजदूरों के आपसी झगड़े सुलह कराये जाते हैं।

लगभग-सौ वर्ष पहले मजदूरों के कार्य के घन्टे निश्चित नहीं थे। बच्चे, बूढ़े, जवान सभी से १०-१२ घन्टे कार्य लिया जाता था, परन्तु अब

प्रत्येक सभ्य देश में लगभग ८ घन्टे कार्य लिया जाता है। तथा सप्ताह में एक-सा दो दिन की छुट्टी दी जाती है। इसके अतिरिक्त आकस्मिक अवकाश, व्याधि अवकाश, अर्जित अवकाश आदि की व्यवस्था की जाती है।

श्रमिकों के रहने के लिए कारखानों के निकट श्रमिक बस्तियाँ बसाई जाती हैं। छोटे-छोटे सुविधा सम्पन्न आगार सस्ते दर पर मुक्त दिए जाते हैं। शिक्षा, चिकित्सा और मनोरंजन का प्रबन्ध किया जाता है। समय-समय पर खेल कूद की प्रतियोगितायें आयोजित की जाती हैं। संगीत, रेडियो, सिनेमा जलपान गृह तथा समाचार पत्र आदि का प्रबन्ध किया जाता है। श्रमिकों को निःशुल्क चिकित्सा का प्रबन्ध किया जाता है। इन सुविधाओं के अतिरिक्त जीवन बीमा की सुविधा दी जाती है। लाभांश का भाग (Bonus) भी दिया जाता है। संविधान में श्रमिकों को मूलाधिकार देने की व्यवस्था की जाती है। श्रम-कल्याण के कार्यों का निरीक्षण करने के लिए श्रम कल्याण अधिकारी की नियुक्ति की जाती है। हमारे देश में भी सरकार ने श्रम कल्याण के लिए समय-समय पर नियम बनाये हैं। सन् १८८८ और १८९१ के कानून के द्वारा कर्मचारियों के काम के घन्टे निर्धारित कर दिए गए और बच्चों से कार्य कराना निषेध कर दिया गया। सन् १९५१ में श्रम-जीवन बीमा कार्यक्रम लागू हुआ। इसके अनुसार बीमारी दुर्घटना और स्त्रियों के लिए गर्भावस्था में निःशुल्क चिकित्सा का प्रबन्ध किया गया। काम करते समय यदि कोई श्रमिक दुर्घटनाग्रस्त होकर कार्य करने के अयोग्य हो जाता है तो उसे उसके प्रति सप्ताह की आय का ७/१२ भाग दिया जाता है। नीचे हम अपने देश में किए गये श्रम-कल्याण सम्बन्धी कार्यों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

[१] चौदह वर्ष से कम के व्यक्ति को रोजगार पर नहीं रक्खा जा सकता।

[२] वयस्क व्यक्ति से ६ घन्टे से अधिक श्रम नहीं लिया जा सकता। सप्ताह में कुल काम के घन्टे ४८ होंगे। बीच में प्रायः एक घन्टे का अवकाश होता है।

[३] अतिरिक्त कार्य के घन्टों के लिए दूनी दर से पारिश्रमिक देने की व्यवस्था की गई है।

[४] स्त्रियों को सात बजे रात्रि से लेकर छः बजे प्रातः तक कार्य पर नहीं लगाया जा सकता।

[५] स्वास्थ्य रक्षा के लिए सफाई, वातायन, प्रकाश, स्वच्छ पेय जल, शौचालय तथा चिकित्सालय आदि का उचित प्रबन्ध किया जाता है। प्रत्येक कारखाना, जिसमें २५० से अधिक श्रमिक कार्य करते हैं, वहाँ जलपान-गृह का होना आवश्यक है।

[६] दुर्घटना से रक्षा के लिए खतरनाक मशीनों के चारों तरफ घेरे की व्यवस्था होती है। मशीनों की गति, तथा भार उठाने की अधिकतम सीमा निर्धारित रहती है। बालकों और स्त्रियों से खतरनाक मशीनों पर कार्य नहीं लिया जा सकता।

श्रम-कल्याण सम्बन्धी कार्यों से श्रमिक सन्तुष्ट रहते हैं तथा कुछ ..ान, और नीरसता का अनुभव नहीं करते। इस कारण उत्पत्ति में वृद्धि होती है। श्रम तथा व्यवस्था में आये दिन उठने वाले झगड़े कम हो जाते हैं। देखा गया है कि श्रम-कल्याण की योजना प्रायः मिल-मालिकों को हृदय से स्वीकार नहीं होती। वह किसी तरह आँसू पोंछने का कार्य कर देता है। परन्तु, राष्ट्र के हित में श्रम-कल्याण कार्यों में सरकार, मिल-मालिक तथा श्रमिक, इन तीनों का सहयोग आवश्यक है।

अध्याय
: १० :
प्रयोग संख्या १

स्थान तिथि समय

प्रयोगकर्ता का नाम

सामग्री प्रयोग पुस्तिका

प्रयोग का उद्देश्य—जाति, समुदाय, सम्प्रदाय तथा क्षेत्रीयता पर प्रकाश डालने वाली लोकोक्तियों का संग्रह और उनके आधार का खण्डन।

नियम व-

चार्ट परिचय—

लोकोक्तियों को हम जनसाधारण का दर्शन कह सकते हैं। वर्षों के अनुभव के पश्चात् बहुत सी लोकोक्तियों का निर्माण होता है। इनका आधार निरीक्षण होता है। जनसाधारण, जिन तथ्यों को जन-जीवन में लगातार देखता है, उन्हें कहावत, दोहा, लोककथाओं आदि द्वारा अभिव्यक्त करता है। यह कथन सर्वथा असत्य नहीं होते। इनके द्वारा किसी सामाजिक सत्य की अभिव्यक्ति होती है परन्तु इन लोकोक्तियों में पूर्वाग्रह (Prejudice) पाया जाता है। इसके निम्नलिखित कारण हैं :—

(१) किसी जाति, समुदाय या सम्प्रदाय विशेष के लोग दूसरी किसी जाति, समुदाय या सम्प्रदाय के बारे में अपनी अनुभूति प्रकट करते हैं।

इस कारण उनकी विभावना (Judgement) पूर्वाग्रह, घृणा, भय तथा स्वार्थ पर आधारित होती है।

(२) सामाजिक दशायें (Social Phenomena) बदलती रहती हैं, मगर लोकोक्ति एक बार जन-साधारण के मन में स्थान बना लेने के पश्चात् शीघ्र नहीं निकलती। इसका परिणाम यह होता है कि दशायें बदल जाती हैं,परन्तु सोचने की रीति और विभावना पुरानी ही रहती है।

(३) इन लोकोक्तियों द्वारा उत्पन्न सामाजिक रूढ़ियाँ सुशिक्षित और नवीनता के वातावरण में रहने वाले व्यक्ति के मन से भी जल्दी दूर नहीं होतीं।

(४) इन लोकोक्तियों का निर्माण प्रायः दोषपूर्ण कारणता के नियम पर आधारित होता है। वास्तव में इन लोकोक्तियों में कारण कार्य का अनिवार्य सम्बन्ध नहीं पाया जाता। जैसे—जनसाधारण में यह भ्रम है कि यदि किसी शुभ कार्य के लिए जाते समय, तेल निकालने का व्यवसाय करने वाली जाति का व्यक्ति सामने पड़ जाय तो कार्य पूर्ण नहीं होता, जब कि उस व्यक्ति और उस कार्य से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। यह भ्रम इस बात पर आधारित है कि उस व्यक्ति के कपड़े तेल और मैल से गन्दे होते हैं, वह बैल की आँख में पट्टी बाँध कर तेलहन को पेरने का नीरस काम करता है। अतः उसे मनहूसियत का प्रतीक मान लेते हैं। इसी प्रकार के कारणता के नियम पर अधिकांश लोकोक्तियाँ आधारित होती हैं।

(५) लोकोक्तियाँ केवल कुछ उदाहरणों को देखकर सामान्य सत्य के रूप में समझ ली जाती हैं, जिन्हें अवैध-सामान्यीकरण (Illicit Generalization) कहते हैं।

(६) लोकोक्तियाँ प्रायः मिथ्या सादृश्य (False Arvalogy) पर आधारित होती हैं, जैसे—पुरवइया हवा बदन में दर्द उत्पन्न करती है उसी प्रकार पूर्व के लोग दुखदायी होते हैं।

जनजीवन में लोकोक्तियों का समावेश इतना व्यापक रूप से होता है कि बालक उनकी मूल भावनाओं को प्रारम्भ से ही ग्रहण करने लगता है। उसकी मनोवृत्ति के निर्माण में इसका विशेष अभिनय होता है। लम्बे चौड़े लेख या भाषण जो प्रभाव नहीं उत्पन्न कर पाते वह प्रभाव एक साधारण दोहा या कहावत के द्वारा उत्पन्न हो जाता है। इस दोहे को कौन नहीं जानता—

"शूद्र, गँवार, ढोल, पशु, नारी।
यह सब ताड़न के अधिकारी।"

ऐसी लोकोक्तियाँ जनसाधारण के दृष्टिकोण को अपने रंग में रँग लेती हैं। अच्छे से अच्छों को लोकोक्तियों की असत्यता पर अविश्वास करना कठिन हो जाता है। लगता है कि हम गलत हो सकते हैं, पर लोकोक्ति गलत नहीं हो सकती। यहीं पर हमें मनोविज्ञान का सहारा लेना उचित है। सामाजिक-मनोविज्ञान (Social Psychology) के द्वारा हम लोकोक्तियों के मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आधार को समझकर उनके प्रभाव से मुक्त हो सकते हैं। तार्किक बुद्धि का होना आवश्यक है। सच्चे समाज-वैज्ञानिक की हैसियत से हमें इन लोकोक्तियों की परख करनी चाहिए। हम इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण को सामने रखकर कुछ लोकोक्तियों की व्याख्या करेंगे। हमारा संग्रह पूर्वी उत्तर प्रदेश में प्रचलित लोकोक्तियों पर आधारित है। हम सामाजिक तथ्य(Social fact) की तरह उन्हें प्रस्तुत कर रहे हैं।

जातीय रूढ़िवादी लोकोक्तियाँ

प्रयोग—

पूर्वी उत्तर-प्रदेश में विभिन्न जातियों के सम्बन्ध में बड़ी मनोरंजक लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं। बात बात पर उन्हें दुहराया जाता है। उदाहरण के लिए कायस्थ एक ऐसी जाति है, जिसका जातीय पेशा लिखना-पढ़ना

है। ज्ञान के कारण ये लोग चतुर और सजग भी होते हैं। इनके बारे में प्रसिद्ध है :—

"निपट कसाई होत है, कायथ कण्ठीबाज।"

× × ×

"आम नेबुआ बानिया गरचापे रसदेत।"

× × ×

"कायथ, कउआ, करहटा मुर्दाहू सो लेत।"

× × ×

निष्कर्ष—

पहली लोकोक्ति का अर्थ है कि वह कायस्थ जो गले कण्ठी धारण किये होता है वह कसाई की भाँति क्रूर स्वभाव का होता है। प्रायः यह पाया जाता है कि कायस्थ जाति के अधिकांश लोग मांसाहारी होते हैं। अतः उनके कण्ठी धारण पर विश्वास कठिनता से किया जा सकता है। यह बात किसी तरह भी सत्य नहीं है। चूँकि बहुत से कायस्थ 'गुरु-मुख' होने के पश्चात् मांस भक्षण तथा मदिरा पान आदि का त्याग कर देते हैं। उनका स्वभाव भी मृदुल होता है। इस तरह के पाखण्डी केवल कायस्थ ही नहीं बल्कि हर जाति में पाये जाते हैं। इसी प्रकार हम अन्य लोकोक्तियों में भी अवैज्ञानिक चिन्तन की पद्धतियों को ढूँढ़ सकते हैं। ये लोकोक्तियाँ जनसाधारण के दृष्टिकोण को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रभावित करती हैं।

प्रयोग योग्य कुछ अन्य लोकोक्तियाँ:—

हम नीचे जाति सम्बन्धी कुछ ऐसी ही लोकोक्तियों का उल्लेख करते हैं :—

(१) "बनिया की छेर (बकरी) मरकही (मारनेवाली)।"

(२) "नाऊ, धोबी, दर्जी तीन जाति अलगर्जी।"

(३) "बारह बरिस ले कूकर जीयें, औ तेरह ले जियें सियार।
वरस अठारह क्षत्री जीयें, आगे जीवन को धिक्कार।"

(४) "अहिर मिताई तब करे, जब सबै मीत मरि जायँ।"

(५) "भूमिहारों का चाटी गुठली नहीं जमती।"

(६) "बैठा बनिया क्या करे? इस कोठी का धाथ उस कोठी करे।"

(७) "ढाल गई, बर्छी गई, गयो तीर तलवार।
घड़ी, छड़ी, चश्मा भयो, क्षत्रिन को हथियार।"

(८) "बाभन, कुत्ता, हाथी, ई तीनो जाति न साथी।"

(९) "जाट रे जाट तेरे सर पर खाट।

(१०) "भाय, भतीजा, भान्जा, भाँट, भाँड़, भुंइहार।
तुलसी छवो भकारते, सदा रहो हुसियार।"

वेश-भूषा सम्बन्धी लोकोक्तियाँ—ऐसी लोकोक्तियों द्वारा वेश-भूषा के सम्बन्ध में ऐसी रूढ़ियाँ बताई जाती हैं कि उस वेश-भूषा तथा भाव-भंगिमा वाले को देखते ही उसके चरित्र के प्रति शंका उत्पन्न हो जाती है। वह दगाबाज पाखण्डी, चरित्रहीन आदि लगने लगता है। हम नीचे कुछ ऐसी लोकोक्तियों को उद्धृत करते हैं :—

(१) "खड़वा चन्दन मधुरी बानी, दगाबाज की यही निशानी।"

(२) ' निपट कसाई होत हैं, कायथ कण्ठी बाज।"

(३) "मुख में राम बगल में छूरी।"

(४) "धीरे चले और मधुरे बोले, उसके ढाहे गिरिवर ढहे।"

(५) "अन्तः शाक्ता, बहिः शैवाः, सभा मध्ये तु वैष्णवाः"

सम्प्रदाय सम्बन्धी लोकोक्तियाँ :—

(१) "बालू पेरे निकले तेल, तबो न करे तुरुक से मेल।"

(२) तिल गुड़ भोजन तुरुक मिताई।
आगे मीठ पीछे करुआई।"

क्षेत्रीयता सम्बन्धी लोकोक्तियाँ—ऐसी लोकोक्तियाँ भी प्रचलित हैं, जिनसे किसी प्रान्त या क्षेत्र विशेष के रहने वालों के सम्बन्ध में पूर्व धारणा उत्पन्न हो जाती है। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी पृथक संस्कृति और सभ्यता होती है। जिसका दूसरे क्षेत्र वाले घृणा या परिहास विषय बना देते हैं :—

(१) "सड़ी मछली गीला भात, बंगाली मारे लम्बा हाथ।"

(२) "भूखा बंगाली खातै भात।"

(३) "छाजा. बाजा, केश, तीनों बंगाला देश।"

(४) "जाहि देश के वायु ते सगरो अंग पिराय,
ताहि देश के मनुजते कैसे हिया जुड़ाय।"

प्रयोग संख्या २

स्थान

तिथि समय

प्रयोग का नाम—विज्ञापन का मनोवैज्ञानिक अध्ययन।

उद्देश्य—विभिन्न प्रकार के विज्ञापनों का संग्रह और उनके आकर्षण के कारणों की व्याख्या।

सामग्री—पत्र-पत्रिकाएँ।

परिचय—वही विज्ञापन सफल होता है, जो व्यक्ति के मन में विज्ञापित वस्तु के प्राप्ति की इच्छा, प्रेरणा, वासना, मूल-प्रवृत्ति जगा सके। मूल इच्छाओं की सूची निम्नलिखित हैं जो विज्ञापन इन्हें जाग्रत कर सके वह सफल होगा।

प्राथमिक इच्छायें :—

(१) स्वादिष्ट भोजन।

(२) स्वादिष्ट पेय ।

(३) सुखमय वातावरण ।

(४) कष्ट तथा खतरे से बचाव ।

(५) काम-वासना की तृप्ति ।

(६) प्रिय जनों का कल्याण ।

(७) सामाजिक मान्यता ।

(८) होड़ में आगे निकलना ।

(९) कठिनाइयों पर विजय ।

(१०) खेल ।

गौण इच्छायें :—

(१) सामान्यता

(२) स्वास्थ्य

(३) कार्य-कुशलता

(४) सुविधा

(५) टिकाऊपन तथा विशिष्टता

(६) आर्थिक लाभ

(७) शैली तथा सौन्दर्य

(८) स्वच्छता

(९) जिज्ञासा

(१०) सूचना तथा शिक्षा

निरीक्षण—हम कुछ सामान्य विज्ञापनों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उनके आकर्षण के कारणों पर प्रकाश डालेंगे ।

१—एक चित्र में सुखी परिवार दिखाया गया है और कहा गया है कि इस परिवार की रक्षा के लिए जीवन-बीमा कराइये । बीमा के अन्य लाभ भी बताये गये हैं । यह विज्ञापन प्रियजनों की रक्षा के साथ-साथ खतरे से बचाता है । यही इसके आकर्षण के कारण हैं ।

२—चित्र द्वारा विज्ञापन की एक कहानी इस प्रकार है—एक कर्मचारी से उसका मालिक नाराज है उसकी सुस्ती और कमजोरी का कारण उसकी पत्नी ने समझ लिया और डाक्टर से पूछ कर एक विशेष प्रकार का पेय ले आयी कर्मचारी स्वस्थ हो गया और उसकी पदोन्नति हो गयी। विज्ञापन में सुरक्षा के साथ ही होड़ में आगे निकल जाने की अपील है।

३—एक विज्ञापन चित्र में एक राजकुमारी से एक शेर प्रेम करता हुआ दिखाया गया है, परन्तु राजकुमारी उससे प्रसन्न तब होती है, जब शेर उसके लिए विशेष प्रकार की मिठाइयों का उपहार लाता है। इस विज्ञापन में उस मिठाई के स्वादिष्ट होने पर बल दिया गया है।

४—कार्टून चल-चित्र द्वारा विज्ञापन की एक कहानी इस प्रकार प्रस्तुत की गई दो भाइयों ने मकान बनवाया। एक ने मकान की नींव कमजोर डलवायी। तूफान से कमजोर नींव वाला मकान धराशायी हो गया, परन्तु दूसरे भाई का मजबूत मकान टिका रहा। इसी तरह जो लोग दन्तमंजन विशेष का प्रयोग करते हैं, वे अपने दाँतों की जड़ें मजबूत बनाते हैं। यह विज्ञापन, सुरक्षा और स्वास्थ्य की इच्छा को जागृत करता है।

५—एक विज्ञापन सामग्री में स्वर्ग के द्वार पर एक बहुत बड़ा ताला लटकता हुआ दिखलाया गया है, परन्तु पहरेदार एक आगन्तुक के प्रवेश के लिए ताला खोलने से इनकार कर देता है, क्योंकि उसके कपड़े एक विशेष साबुन से धुले हुए नहीं हैं। यह विज्ञापन हास्यप्रद होने के साथ ही वस्तु की उपयोगिता पर प्रकाश डालता है।

निष्कर्ष—मनोविज्ञान का आधार मनोवैज्ञानिक होता है। उसका आकर्षण प्रारम्भिक और गौण इच्छाओं की उत्तेजना पर निर्भर होता है। इसके अतिरिक्त विज्ञापन का आकार, रंग, चित्र, शीर्षक, कहानी, विनोद आदि का भी प्रभाव पड़ता है।

प्रयोग संख्या ३

स्थान

तिथि समय

प्रयोग का नाम—निर्वाचन के समय प्रचार का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

उद्देश्य—नगरपालिका, जिला परिषद अथवा धारा सभा के चुनाव के समय में चुनाव प्रचार का इस दृष्टिकोण से निरीक्षण करना कि उनमें वास्तविक तथ्य, निर्देशन योग्यता और संवेगोत्तेजन की क्षमता कहाँ तक है ?

परिचय—प्रजातान्त्रिक व्यवस्था वाले देशों में चुनाव जनता की शिक्षा का महत्वपूर्ण माध्यम है। अ[illegible]तों द्वारा जनता, समाज में निहित प्रवृत्तियों का प्रकाशन करती [illegible]। परन्तु इस अवसर का दुरुपयोग भी सम्भव है। जन-साधारण की शक्ति में मनोवैज्ञानिक विस्फोट के तत्व छिपे रहते हैं। चुनाव प्रचार उन्हें भड़का देते हैं। राजनैतिक दलों का विरोध, चुनाव आन्दोलनों के द्वारा, जनता में तरह-तरह के भ्रम अन्ध-विश्वास, अफवाहें और संवेगोत्तेजनात्मक स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। परिणामस्वरूप जनता के राजनैतिक शिक्षण का उद्देश्य समाप्त हो जाता है, उसके स्थान पर दूषित मनोवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। हमारा तो विचार है कि भारत में होने वाले चुनाव सैद्धान्तिक न होकर मनोविज्ञान युद्ध (Psychological Warfare) का रूप ले लेते हैं। ऐसे दूषित प्रचारों से देश की एकता भंग होती है।

चुनाव प्रचार का निरीक्षण और उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषणः—हम नीचे कुछ ऐसे ही चुनाव-प्रचार तकनीक का उल्लेख करते हैं।

(१) जातीयता और साम्प्रदायिकता—चुनाव में जातीयता की भावना जगाकर उल्लू सीधा करने का सरल ढंग निकाल लिया जाता है। भारतवर्ष में जातीयता इतनी प्रबल हो गई है कि प्रत्येक राजनैतिक दल अपने उम्मीदवारों के चुनाव में जातीयता को विशेष स्थान देता है। सन् १९५७ के साधारण चुनाव में इस प्रकार के नारे भी लगाये गये थे "कांग्रेसी क्षत्री को वोट दो "कम्युनिस्ट ब्राह्मण को वोट दो" "सोश-लिस्ट भूमिहार को न भूलो" आदि। गाँवों में जाति के चौधरियों को मिलाया जाता है उन्हें उचित अनुचित प्रलोभन देकर उनकी जाति का मत प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। साथ ही साथ यह भी कहा जाता है कि विरोधी उम्मीदवार "हमारी जाति का शत्रु है।" इस प्रचार से असुरक्षा का भाव उत्पन्न होता है और मतदाता अपने ही समुदाय वाले (In-Group) को वोट देने में ही अपनी सुरक्षा समझता है। सम्प्रदाय तथा क्षेत्र सम्बन्धी भेदभाव उत्पन्न करने में भी यही तकनीक अपनायी जाती है। ऐसा प्रचार व्यक्तिगत सम्पर्क के द्वारा अधिक होता है।

चरित्र पर आक्षेप—चुनाव प्रचार में प्रत्येक उम्मीदवार अपने विरोधी उम्मीदवारों के चरित्र के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के आक्षेप करता है जैसे "अमुक उम्मीदवार दूसरे उम्मीदवार से मिल गया है और ऐन मौके पर अपना नाम वापस ले लेगा", "वह चरित्र भ्रष्ट है।" "उसने अमुक संस्था में बेइमानी की", उसका पारिवारिक इतिहास गद्दारी से भरा है।" आदि। कभी कभी ऐसे आक्षेपों को लेकर नोटिसें बटवाई जाती हैं। हम इस प्रकार की नोटिस का नमूना नीचे प्रस्तुत करते हैं।

"श्री······से सावधान !" "जनता जाल में न फँसे।"

"भाइयों! आपने बकरी के खोल में भेड़िया न देखा हो तो श्री··· को देखिये। आपके परदादा तो अंग्रेजों की जूती चाटते थे। देश प्रेमियों को पकड़वाकर कतल कराने के बदले इन्हे जागीरें मिली हैं। स्वयं

इन्होंने कन्ट्रोल के जमाने में काले बाजार में लाखों रूपये कमाये हैं। इन्होंने एक युवती से गुप्त विवाह रचाया, बाद में उसे त्याग दिया। युवती ने निराश होकर आत्म-हत्या कर लिया। क्या आप ऐसे व्यक्ति को अपना वोट देंगे ?

चुनाव के समय जन-साधारण की यह मनोवृत्ति होती है कि वह किसी भी अफवाह पर विश्वास करने के लिए तैयार रहता है।

(३) राजनैतिक कीचड़:—चुनाव में राजनैतिक कीचड़ खूब जी भर कर उछाले जाते हैं। भाषणों और इश्तहारों द्वारा ऐसे तर्क प्रस्तुत किये जाते है, जो वास्तव में संवेगोत्तेजक होते हैं, परन्तु ऊपर से तर्कपूर्ण लगते हैं। राजनैतिक दलों का कच्चा-चिट्ठा खोला जाता है। उनकी नीति की कमजोरियों को बढ़ा-चढ़ा कर रक्खा जाता है। राजनैतिक वाक् चपल (Demagogue) कुशलता पूर्वक जन-साधारण के भय और अविवेकशील विचारों से खेलते हैं। मस्तिष्क के उस स्तर को प्रभावित करते हैं, जो संकट कालीन अवस्था में अत्यधिक उत्तेजित हो जाता है। वाक्चालता द्वारा लाखों आदमियों के व्यवहार को प्रभावित किया जा सकता है। प्रचार विधियों से सुप्त भावनाओं और प्रेरणाओं को जगा दिया जाता है। असुरक्षा के भाव पर ही वाक्चाल अधिक निर्भर रहता है। एक लचर दलील सुनिये जो सन् १९५२ के चुनाव में प्रचलित थी। सत्तारूढ़ दल के निम्न स्तर के कार्य-कर्त्ता प्रचार करते थे "दूसरे दल के लोगों को मत चुनो, क्योंकि उनकी लालच अतृप्त है। हमने तो इतने दिनों तक शासन किया है और भ्रष्टाचार से हमारा पेट कुछ भरा हुआ है। नये लोगों की भूख भी नई होगी, वे भ्रष्टाचार बढ़ायेंगे।" सचमुच जन-साधारण पर इस प्रचार का प्रभाव पड़ा था। वह सत्तारूढ़ दल के शासन से इतनी त्रस्त था कि अधिक भूखे लोगों के हाथ में सत्ता देकर अधिक असुरक्षित अवस्था में पड़ना नहीं चाहता था।

जब जनता की आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती तो उसके मन में रोष; असन्तोष और भय भरा रहता है। इन्हें उत्तेजित करने के लिए राजनैतिक व्यक्ति इस बात को दुहराते हैं कि "जनता भूखी नंगी है" "उसका शोषण हो रहा है, "उसका घर और देश खतरे में है" "धर्म खतरे में है।" फिर वे आश्वासन दिलाते हैं कि चुने जाने पर उनका दल इन सब कठिनाइयों को दूर करेगा। ऐसे नारे सुनने में आते हैं—

"रोटी कपड़ा रोजी दो
वर्ना कुर्सी छोड़ दो।"

— —

यह आजादी झूठी है,
देश की जनता भूखी है।

सन् १९६२ के चुनाव में कुछ राजनैतिक दल गन्दे प्रचार पर उतर आये। उत्तर प्रदेश के एक नगर में एक जुलूस निकाला गया, जिसमें राष्ट्रीय आन्दोलन के एक महान नेता को चित्र द्वारा गाय का बध करते करते हुए दिखाया गया। इस प्रचार का उद्देश्य जनता की धार्मिक भावनाओं को जगा कर दूसरे के दलों के प्रति घृणा उत्पन्न करके मतदाताओं को अपने पक्ष में करना था।

चुनाव टेम्पो (Election Tempo)

ज्यों-ज्यों मतदान की तिथि निकट आती जाती है, चुनाव प्रचार की तीव्रता (Tempo) बढ़ती जाती है। टेम्पो ऊँचा करने के लिए निम्नलिखित साधन अपनाये जाते हैं:—

(१) जुलूसः—सुसंगठित लम्बे जुलूस, रात में मशालों का जुलूस निकाल कर मतदाताओं पर दल विशेष या उम्मीदवार विशेष की शक्ति का प्रदर्शन किया जाता है। समर्थकों की भारी संख्या देखकर साधारण मतदाता के ऊपर सुझाव (Suggestion) पड़ता है।

(२) नारे लगाना:—गर्म जोशीले नारे लगाये जाते हैं, जिनका यह सुझाव होता है कि अमुक उम्मीदवार जीत रहा है। गत चुनाव में एक नारा इस प्रकार प्रचलित हुआ—

"एक बात सुनी है"
"क्या भाई क्या ?"
"कांग्रेस जीत रही है"

(३) नेताओं का दौरा:—सभी दलों के नेताओं का व्यापक दौरा आयोजित होता है। ये नेता उम्मीदवार के पक्ष में बोलते हैं और अपना सैद्धान्तिक मत जनता को समझाते हैं।

(४) इश्तहारबाजी:—छपे हुए इश्तहार और नोटिसें खूब बाँटी जाती है। दीवालों और सड़कों पर उम्मीदवारों का नाम और चुनाव-चिन्ह अंकित किया जाता है। टेम्पो ऊँचा करने के लिए फुस-फुस आन्दोलन चलाया जाता है, इसके द्वारा समर्थक लोग जनता में बिखर कर चार-पाँच का घेरा बना कर अपने उम्मीदवार के पक्ष और दूसरों के विपक्ष में बातें करते हैं। आज कल नगरों के जलपान-गृह तथा 'काफी हाउस' फुस-फुस आन्दोलन के अड्डे बन गए हैं।

घर-घर प्रचार (Door to door Convessing)

(५) समर्थकों का दल वोटरों के घर जा-जा कर अपने उम्मीदवार की अच्छाई, उसके नीति और कार्य-क्रम को समझाते हैं। प्रश्नों का उत्तर देकर मतदाता के सन्देह को दूर करते हैं। घर-घर प्रचार का मनोवैज्ञानिक प्रभाव यह होता है कि मतदाता अपने महत्व को समझता है। लोगों का उसके दरवाजे पर बार-बार आना उसकी आत्म-महत्ता (Ego) को सन्तुष्ट करता है। लोकाचार के अनुसार वह यह भी समझता है कि अमुक व्यक्ति उसके द्वार पर आया।

प्रश्नावली

अध्याय १

[१] व्यावहारिक मनोविज्ञान किसे कहते हैं ? हमारे दैनिक जीवन में उसकी क्या उपयोगिता है ?

[२] व्यावहारिक मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र पर प्रकाश डालिए।

[३] व्यावहारिक मनोविज्ञान तथा सामान्य मनोविज्ञान का परस्पर सम्बन्ध बताइये।

अध्याय २-३

[१] निर्देशन किसे कहते हैं ? जीवन में किन परिस्थितियों में निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है ?

[२] निर्देशन के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।

[३] बुद्धि-परीक्षा सम्बन्धी सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट कीजिए कि निर्देशन में उनका क्या स्थान है ?

[४] मार्ग निर्देशन में रुचि का स्थान बताइये और उसके नापने की विधियों पर प्रकाश डालिए।

[५] शैक्षिक निर्देशन से आप क्या समझते हैं ? शैक्षिक निर्देशन देते समय किन-किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए ?

[६] व्यावसायिक निर्देशन का उद्देश्य बताइये ? व्यवसाय सम्बन्धी जानकारी का व्यावसायिक निर्देशन से क्या सम्बन्ध है ?

[७] भारतीय अवस्थाओं में मार्गोपदेशन क्यों आवश्यक हैं ?

अध्याय ४

[१] मानसिक स्वास्थ्य का क्या अर्थ है ? उत्तम मानसिक स्वास्थ्य के क्या लक्षण होते हैं ?

[२] कुशल अभियोजन और कुअभियोजन में क्या अन्तर है ? अभियोजन प्रक्रिया में बाधाओं का क्या स्थान है ?

[३] मानसिक अस्वस्थता की रोकथाम की कुछ प्रमुख विधियों पर प्रकाश डालिए।

अध्याय ५

[१] बाल अपराध के मुख्य कारणों पर प्रकाश डालिए ।

[२] "बालक अपराधी उत्पन्न नहीं होता, बल्कि बनाया जाता है ।" इस कथन की व्याख्या कीजिए ।

[३] गरीबी और परिवार किस प्रकार अपराधशीलता के कारण बनते हैं ।

[४] उन प्रमुख कारणों का उल्लेख कीजिये, जिनसे बालापराध-निरोध और सुधार में सहायता मिलती है ।

अध्याय ६

[१] भीड़ की परिभाषा दीजिए और भीड़ व्यवहार के मनोवैज्ञानिक कारणों पर प्रकाश डालिए ।

[२] भीड़ का वर्गीकरण कीजिए । क्रियाशील भीड़ और भयग्रस्त भीड़ का अन्तर स्पष्ट कीजिए ।

[३] क्रियाशील भीड़ व्यवहार के मनोवैज्ञानिक कारणों पर टिप्पणी लिखिये ।

[४] भीड़ व्यवहार में नेता के स्थान का महत्व समझाइये ।

[५] भीड़ व्यवहार से बचने के उपायों पर प्रकाश डालिए ।

[६] श्रोतृगण के मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रकाश डालिए ।

[७] श्रोतृगण और भीड़ में अन्तर स्पष्ट कीजिए ।

अध्याय ७

[१] सामूहिक तनाव के मनोवैज्ञानिक कारणों पर प्रकाश डालिए । भारतवर्ष पर यह अवस्थायें कहाँ तक लागू हैं ?

[२] जातिवाद और जातीयता में अन्तर स्पष्ट कीजिए । क्या भारत में जातिवाद बढ़ रहा है ?

[३] भाषावाद और क्षेत्रीयता के आधार पर उत्पन्न होने वाले सामूहिक तनाव के कारण और निवारण पर प्रकाश डालिए ।

अध्याय ८

[१] विज्ञापन की परिभाषा देते हुए उसकी समस्या पर प्रकाश डालिए। ५०१

[२] विज्ञापन का वर्गीकरण कीजिए तथा वर्गीकरण के आधार को स्पष्ट कीजिए।

[३] विज्ञापन के आकर्षण के मनोवैज्ञानिक आधार उदाहरण सहित बताइये।

[४] विज्ञापन और प्रचार में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

[५] प्रचार के मनोवैज्ञानिक आधार क्या हैं? प्रभावशाली प्रचार के प्रमुख नियमों का उल्लेख कीजिए।

[६] प्रचार की प्रमुख विधियों पर प्रकाश डालिए। भ्रामक प्रचार तथा विज्ञापनों से क्या क्षति पहुँचती है? उसे कैसे रोका जा सकता है?

अध्याय ९

[१] आधुनिक व्यवसाय में व्यावसायिक मनोविज्ञान का इतना महत्त्व क्यों है?

[२] किसी व्यवसाय के लिए उम्मीदवारों का चुनाव कैसे करना चाहिए? चुनाव में कौन-कौन सी सावधानी बरतनी चाहिए।

[३] कर्मचारियों की पदोन्नति के सम्बन्ध में किन-किन बातों पर ध्यान रखना चाहिए।

[४] कार्य की परिस्थितियाँ कैसे सुधारी जा सकती हैं? उनका प्रभाव स्पष्ट कीजिए।

[५] श्रम-कल्याण का आधुनिक उद्योग में क्या स्थान है? इस दिशा में भारत में क्या हो रहा है?